जैन आगम वाद्य कोश

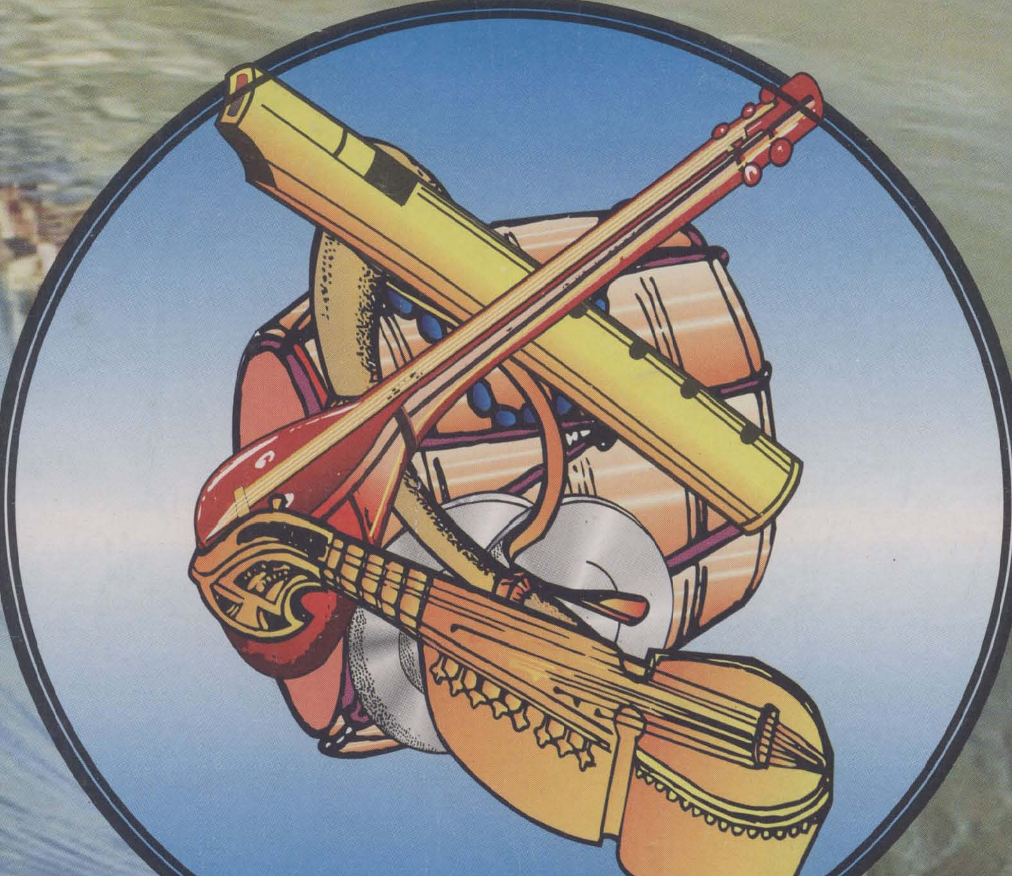

वाचना प्रमुख
गणाधिपति तुलसी

प्रधान संपादक
आचार्य महाप्रज्ञ

संपादक
मुनि वीरेन्द्र कुमार
मुनि जयकुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगम वाद्य कोश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशन

जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगम वाद्य कोश

वाचना प्रमुख
गणाधिपति तुलसी

प्रधान संपादक
आचार्य महाप्रज्ञ

संपादक
मुनि वीरेन्द्र कुमार
मुनि जयकुमार

प्रकाशन
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१ ३०६

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

ISBN : 81-7195-089-

स्व. माणकचंद जी सूर्या की पुण्य स्मृति में
उनकी धर्मपत्नी श्रीमती केशरबाई सूर्या
सुपुत्र– किशन लाल-कुसुम देवी
सुपौत्र–सचिन-रीमा, हैप्पी-प्रिया सूर्या
(आमेट/मुम्बई)

प्रथम संस्करण : जुलाई २००४

मूल्य : १००/- (एक सौ रूपया मात्र)

कंपोज–सर्वोत्तम साहित्य संस्थान, उदयपुर

मुद्रक : श्री वर्धमान प्रेस, नवीन शहादरा, नई दिल्ली-३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

आगम साहित्य में दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र आदि का वर्णन है। उसके साथ प्रासंगिक रूप में अनेक विषयों का निरुपण भी प्राप्त है। प्रस्तुत कोश से पूर्व वनस्पति कोश और प्राणी कोश का निर्माण हो चुका है। 'जैन आगम वाद्य कोश' उसी शृंखला का तीसरा कोश है। मुनि वीरेन्द्रकुमार और मुनि जयकुमार ने इसके निर्माण में काफी श्रम किया है। आगम अध्येता के लिए यह बहुत उपयोगी होगा।

१८ जून २००४ **आचार्य महाप्रज्ञ**

धानीन (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

जैन आगमों का ज्ञान सूक्ष्म और गहनतम है। इसमें आत्मविद्या के साथ-साथ अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का विस्तार से वर्णन किया गया है। शायद ही ऐसा कोई विषय हो जिसका उल्लेख आगम साहित्य में न हुआ हो। किन्तु अभी तक कुछेक विषयों को छोड़कर अनेक विषय ऐसे हैं, जिनका विधिवत् स्पर्श भी नहीं किया गया। अनेक विषय अछूते हैं। आवश्यकता है कि उन विषयों को छुआ जाए और भारतीय संस्कृति की प्राचीन धरोहर को वर्तमान के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाए।

आज प्राच्य भारतीय विद्याओं पर अनेक विद्वज्जन शोध कार्य कर रहे हैं और अनेक महत्त्वपूर्ण शोध ग्रंथ प्रकाश में आए हैं। जैन परम्परा के विपुल साहित्य पर भी काफी शोध कार्य हुआ है और हो रहा है। गुरुदेव श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञ के कुशल नेतृत्व ने शोध कार्य को महत्त्वपूर्ण गति प्रदान की, जिसके फलस्वरूप अनेक शोध पूर्ण आगम एवं कोश प्रकाश में आए।

प्राचीन भारतीय संगीत वाद्य पर अनेक शोध कार्य हुए हैं, जिनका आधार वैदिक साहित्य रहा है। किन्तु जैनागमों में प्रयुक्त वाद्य वाचक शब्दों के विषय में कार्य नहीं किया गया। संभवतः यह पहला कार्य है, जिसमें जैनागमों में प्रयुक्त वाद्य वाचक शब्दों की पहचान का कार्य किया गया है।

वाद्य कोश की परिकल्पना और निष्पत्ति

गंगाशहर मर्यादा महोत्सव (वि. सं. २०५७) के पश्चात् आचार्यश्री महाप्रज्ञ का पदार्पण बीकानेर हुआ दोपहर को भोजन के पश्चात् टहलते हुए फरमाया—प्राणी कोश की भांति यदि वाद्य कोश भी तैयार हो जाए तो अर्थावबोध के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है। क्योंकि व्याख्याकारों ने अधिकांश शब्दों को "लोकतोऽवसेया" "अव्याख्यातास्तु भेदा लोकतः प्रत्येतव्याः" वाद्यविशेष, तूण विशेषः आदि-आदि कहकर उनके अवबोध की पूर्ण अवगति नहीं दी। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने मुनिद्वय (मुनि वीरेन्द्र कुमार, मुनि जयकुमार) को कार्य करने का निर्देश दिया। हम दोनों संत उसी दिन से इस कार्य में संलग्न हो गए।

सर्वप्रथम हमने राजप्रश्नीय सूत्र को आदर्श मानकर जैनागमों में प्रयुक्त वाद्य वाचक शब्दों की एक सूची बनाई। फिर उनके अर्थावबोध एवं स्वरूप निर्णय के लिए अनेक ग्रंथों का अवलोकन प्रारंभ किया।

समय के साथ भाषा शैली और अर्थ में परिवर्तन होता है, यह सर्वविदित है। सोमेश्वर देव ने अपने संगीत ग्रंथ 'मानसोल्लास' ३/५७२ में 'तंत्रीभेदैः क्रियाभेदैः वीणावाद्यमनेकधा' कहकर अर्थभेद और क्रियाभेद से वीणाओं के अनेक प्रकारों को स्वीकार किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही कारण है कि आगमों में वर्णित अनेक शब्द ऐसे हैं जिनकी भाषा शैली और अर्थावबोध के परिवर्तन के कारण उनकी पहचान दुष्कर सी हो गई है। वैसी स्थिति में यह उलझन पैदा हो जाती है कि शब्द-विशेष का बिल्कुल सही अर्थ क्या होना चाहिए। इसका निष्कर्ष निकालने के लिए अन्य आगम ग्रंथ, अन्य समकालीन साहित्य, विभिन्न प्रकार के कोश ग्रंथ, आधुनिक वाद्य यंत्र से संबंधित ग्रंथ आदि का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। कुछेक शब्दों का विमर्श यहां प्रस्तुत किया जा रहा है–

'आमोट' शब्द राजप्रश्नीय सूत्र में वाद्य के अंतर्गत उल्लिखित है। आधुनिक किसी भी कोश में यह शब्द वाद्य के अर्थ में प्राप्त नहीं हुआ। फिर प्रान्तीय वाद्य यंत्रों से संबंधित पुस्तकों के अवलोकन से ज्ञात हुआ कि 'आमोट' शब्द मंजीरा का ही पर्याय है, जिसे मणिपुर और तिब्बत के निकटवर्ती क्षेत्रों में आमोट कहते है। अतः अर्थ की संगति बैठ गई।

'नंदि' शब्द निसि. १७/१३६ में वितत वाद्य के रूप में प्रयुक्त हुआ है। व्याख्याकारों ने इसका स्पष्टार्थ नहीं बताया। अनेक कोशों एवं ग्रंथों का अवलोकन करने के बाद भी इस शब्द का अवबोध नहीं हो पाया। डॉ. लालमणि मिश्र ने भारतीय संगीत वाद्य में इसे आनंद लहरी के रूप में उल्लिखित किया है। आनंदलहरी, नंदि का ही पर्याय है। अर्थ स्पष्ट हो गया।

आगमों में अनेक शब्द ध्वनि के आधार पर उल्लिखित हैं जैसे–कुक्कययं, दुंदुभि आदि।

'कुक्कययं' शब्द सूय. १/४।३८ में प्रयुक्त हुआ है। व्याख्याकारों ने इसको खुंखुणक कहा है। खुंखुणक वाद्य, ध्वनि के आधार पर रखा गया प्रतीत होता है क्योंकि कुक्कययं वाद्य की ध्वनि खुंखुणक जैसी ही निकलती है।

'दुंदुभि' शब्द उत्त. १२/३६, अनु. ५६९, पज्जो. ९५, राज. ७७, औप. ६७ आदि आगमों में प्रयुक्त हुआ है। दुंदुभि नगाड़ा की ही एक विशेष प्रजाति है। जिसका वादन करने पर दुं दुं ध्वनि निकलती है, इसीलिए इसको दुंदुभि कहा गया है।

आगमों में वाद्य वाचक शब्द

राजप्रश्नीय, निशीथ, भगवती, प्रश्नव्याकरण, आचारचूला आदि आगमों में दीक्षा भगवान महावीर के दर्शन हेतु देवागमन, श्रोत्रेन्द्रिय संयम, धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों के प्रसंगों पर वाद्य वाचक शब्दों की लम्बी तालिकाएं प्राप्त होती हैं।

वैदिक वाङ्मय में संगीत वाद्यों का विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं होता। ''हिरण्य केशी सूत्र'' में तत् वाद्यों के अंतर्गत ताल्लुक वीणा, कांडवीणा, पिच्छोरा, अलाबुवीणा, कपिशीर्षवीणा का नाम उल्लिखित है। वितत वाद्यों के अंतर्गत दुंदुभि, द्रव्य, केतुमत विश्वगोत्र के नाम प्राप्त होते हैं। घन वाद्यों के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। सुषिर वाद्यों के अंतर्गत गोधा, नाली, तूण, वाणिची, वेणु, भारा धुनी, नालिका का उल्लेख मिलता है।

वाद्यों का प्राचीन एवं आधुनिक वर्गीकरण

जैनागमों में संरचना एवं वादन क्रिया कि आधार पर वाद्यों को चार भागों में विभक्त किया गया है–तत, वितत, घन और सुषिर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महर्षि शत (जीवनकाल २०० ईसा पूर्व) और दत्तिल ने भी उपरोक्त वर्गीकरण को मान्यता प्रदान की।[१]

१. तत (कार्डोफोनिक)–तारों से स्वर उत्पन्न करने वाले वाद्य, जैसे–सितार, वीणा, एकतारा आदि।

२. वितत (मैम्ब्रेनोफोनिक)–इस श्रेणी में चमड़े से मढ़े हुए ताल वाद्य आते हैं, जैसे मृदंग, मुरज, हुडुक्का आदि।

३. घन (आटोफोनिक)–इस श्रेणी के वाद्यों से स्वर निकालने के लिए वाद्यों को आपस में टकराया अथवा घर्षण किया जाता है जैसे–ताल, मंजीरा, करताल आदि।

४. सुषिर (एयरोफोनिक)–इस श्रेणी में फूंक अथवा हवा से बजने वाले वाद्य आते हैं, जैसे–बांसुरी काहला, शंख, बीन आदि।

इनमें तत और सुषिर मुख्यतः स्वर वाद्य हैं तथा वितत और घन लय वाद्य हैं।

नारद ने संगीत मकरन्द में तीन ही वर्गीकरण किये हैं–आनद्ध, तत और घन। बौद्ध साहित्य में पांच वर्गीकरण प्राप्त होते हैं–आतत, वितत, आतत-वितत, घन और सुषिर।

ईसा की छठी शताब्दी से पूर्व कोहल ने घन, सुषिर, चर्मबद्ध और तंत्री नामक चार वाद्य भेद किये थे। दूसरी से छठी शताब्दी ई. के मध्य रचित तमिल के संगम ग्रंथों में हमें पांच वर्ग प्राप्त होते हैं, तोल-करुवि (तोल=चमड़ा), नरंपु-करुवि (नरंपु=तांत), तुलई-करुवि (तुलई=छिद्र), कंज-करुवि (कंज=धातु) और मिटात्रु-करुवि (मानवकंठ=ध्वनि)। तमिल वाद्य में करुवि का अर्थ है–वाद्य।

आज पूरे विश्व में जैनागमों एवं भारतनाट्यशास्त्र में प्राप्त चार वर्गीकरण ही व्यापक रूप में स्वीकृत हैं। नवीनतम प्रयासों के अनुसार आधुनिक इलेक्ट्रानिक वाद्यों को एक ओर छोड़ देने पर भी घन वाद्यों के सोलह, अवनद्ध के ग्यारह, सुषिर के बारह और तत के पन्द्रह भेद उपलब्ध हैं।

वाद्य कोश की रूपरेखा

प्रस्तुत कोश में तत, वितत, घन और सुषिर वाद्यों की कुल संख्या १०८ है। उनको अकारादि अनुक्रम से संयोजित किया गया हैं। इसमें मूल शब्द प्राकृत भाषा के हैं। वे मोटे, गहरे टाइप में क्रमांक से अनुगत हैं। उनके सामने कोष्ठक में संस्कृत छाया दी गई है। जिस शब्द की छाया नहीं बनती यानी जो देशी शब्द हैं वे मूल शब्द ही कोष्ठक में दिये गये हैं। यदि किसी शब्द का पाठान्तर है तो उसके आगे (पा.) लिखकर पाठान्तर को सूचित किया गया है। कोष्ठक के आगे प्रमाण स्थल का निर्देश है। मूल प्राकृत शब्द के नीचे हिन्दी के पर्याय तथा क्वचित् अन्यान्य भाषाओं के पर्याय भी दिये हैं। एक ही शब्द के अनेक वाद्य प्राप्त होने पर उन सभी वाद्यों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

कोश में उल्लिखित विवरण अनेक ग्रंथों से चयनित होने के कारण इसमें भाषा की एकरूपता नहीं है, फिर भी विषय की पूरी जानकारी हो सके। इसके लिए भाषा का यत्र-तत्र परिमार्जन भी किया गया है।

१. (क) भरत नाट्य २८/३–ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।
घन तातस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते॥

(ख) संगीत चूड़ामणि पृ. ६९–दत्तितेन तु आनद्धं ततं घनं सुषिरं चेति चतुर्विधं वाद्यं कीर्तितम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनागमों, व्याख्याकारों और संगीत ग्रंथों में प्राप्त वर्णन में परस्पर संवादिता न होने पर विमर्श भी प्रस्तुत किया गया है। डॉ. लालमणि मिश्र की पुस्तक 'भारतीय संगीत वाद्य', बी. चैतन्यदेव की पुस्तक–'वाद्य यंत्र', एम. ए. पुरंदर की पुस्तक–'भारतीय वाद्य गलु', शन्नोखुराना की पुस्तक–'राजस्थान का लोक संगीत' आदि पुस्तकों का इसमें काफी उपयोग किया गया है।

अंत में तीन परिशिष्ट दिये गए हैं–

प्रथम परिशिष्ट में अकारादि क्रम से प्राकृत शब्द तथा उसके हिन्दी आदि अर्थ दिये गये हैं।

द्वितीय परिशिष्ट में मूल प्राकृत शब्द तथा तत, वितन, घन और सुषिर वाद्यों की तालिका दी गई है।

तृतीय परिशिष्ट में संदर्भ ग्रंथ सूची प्रस्तुत की गई है।

आभार

जीवन निर्माता परमाराध्य गणाधिपति श्री तुलसी एवं हमारे प्रेरणास्रोत आचार्यश्री महाप्रज्ञजी २०वीं शताब्दी के आगम-दिवाकर हैं। उनके प्रत्यक्ष निर्देशन में यह कार्य संपादित करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ । जैन विश्व भारती द्वारा प्रायोजित आगम साहित्य प्रकाशन के अंतर्गत प्रकाशित सारे शोध-ग्रंथ इनके अन्तःदर्शन (Tntuition) की लेजर किरणों की पैनी पहुंच के कारण समग्र विद्वज्जगत् में प्रशंसनीय हुए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में भी यत्र-तत्र जो उन्मेष आए हैं, उनमें उनकी प्रज्ञा का अकल्पनीय योग हैं।

श्रद्धेय युवाचार्यश्री महाश्रमणजी की प्रेरणा, प्रोत्साहन ने इस कार्य को गति प्रदान की है।

इस श्रम साध्य कार्य में मुनिश्री धनंजयकुमारजी का अविस्मरणीय सहयोग एवं मार्ग दर्शन प्राप्त होता रहा, जिससे यह दुरूह कार्य संभव हो सका।

श्री संदीप कुमार मेहता (बोराबड़) का लिपिकरण आदि कार्यों में सहयोग रहा है।

भारतीय संगीत वाद्य पुस्तक को उपलब्ध कराने में शासनसेवी श्री मांगीलालजी सेठिया का उल्लेखनीय सहयोग रहा।

प्रकाशन–व्यवस्था में जैन विश्व भारती के मंत्री श्री भागचंदजी बरड़िया तथा भाई श्री किशन जैन निष्ठा से सक्रिय रहे हैं।

ज्ञात-अज्ञात, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जिन-जिनका सहयोग प्राप्त हुआ हैं, उनके प्रति कृतज्ञता एवं शुभाशंसा।

आशा है प्रस्तुत ग्रंथ न केवल आगम अध्येताओं के लिए अपितु इस क्षेत्र में शोध कार्य करने वाले अध्येताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा।

राजसमंद

५ जून २००४

मुनि वीरेन्द्र कुमार

मुनि जय कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत-सूची

अनु.	– अनुयोगद्वार	पज्जो.	– पज्जोसना कल्प
अभि.	– अभिधान चिंतामणि कोश	प्रश्नव्या.	– प्रश्नव्याकरण
आ. चू.	– आयार चूला	भग.	– भगवती
उत्त.	– उत्तरज्झयणाणि	राज.	– राजप्रश्नीय
उवा.	– उवासगदसाओ	राज. टी.	– राजप्रश्नीय टीका
औ.	– औपपातिक	सम.	– समवायांग
जम्बू.	– जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	राज.	– राजस्थानी
ज्ञाता.	– ज्ञाताधर्मकथा	सं. र.	– संगीत रत्नाकर
जीवा.	– जीवाजीवाभिगम	गुज.	– गुजराती
ठाणं	– स्थानांग	कन्न.	– कन्नड़
दशा.	– दशाश्रुतस्कंध	बं.	– बंगाली
नि. चू.	– निशीथ चूर्णि	उ. प्र.	– उत्तरप्रदेश
पा.	– पाठान्तर	निसि.	– निशीथ
प्रज्ञा.	– प्रज्ञापना	सूय.	– सूयगड़ो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आडम्बरो (आडम्बर)–ठाणं ७/४२, अनुयोगद्वार-३०१, नगाड़ा, नक्कारा

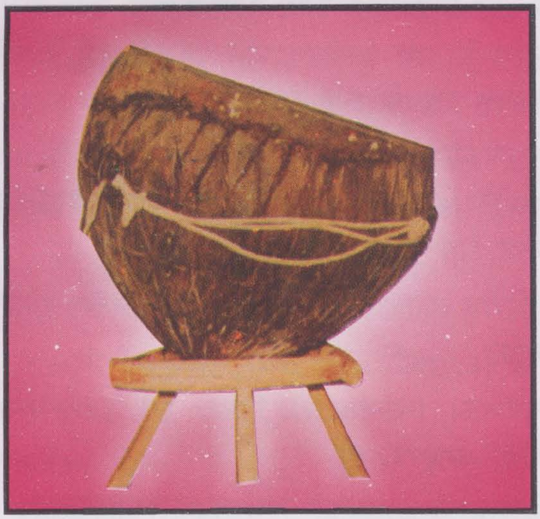

आकार–नौबत वाद्य से कुछ छोटे इस वाद्य का आकार दो कटोरों के समान होता है। जिनमें एक छोटा और दूसरा बड़ा होता है। बड़ा कटोरा तांबे का तथा छोटा लोहे का बना होता है। बड़े कटोरे पर भैंस की तथा छोटे पर ऊंट की खाल मढ़ी होती है। यह खाल चमड़े की बद्धियों की सहायता से कसी जाती है।

विवरण–पूरे उत्तर भारत में मिलने वाला यह एक अवनद्ध-वाद्य है। यह एक व्यक्ति के द्वारा दो डण्डियों से बजाया जाता है। बड़ा नगाड़ा नीचे स्वर में तथा छोटा नगाड़ा बहुत ऊंचे स्वर में मिलाया जाता है। दोनों में से छोटे की आवाज पैनी होती है। जिसे मादि या मादा कहा जाता है। जबकि बड़े की आवाज भारी होती है, उसे नर कहा जाता है। इसके स्वर की ऊंचाई के लिए प्रायः इसे आग में सेंकते है। बड़े नगाड़े की सतह में एक छेद होता है जिससे पानी डालकर ऊपर मढ़ी खाल तक पहुंचाया जाता है, जिसके कारण उसका स्वर नीचा होता है। कहरवा दादरा के अतिरिक्त विभिन्न कठिन तांले तथा लयकारिया भी इस वाद्य पर बजाई जाती है। मुसलमान इसको नक्कारा कहते हैं, नगाड़ा इसी का बिगड़ा हुआ रूप है। राजस्थान के शेखावटी और अलवर क्षेत्र में नगाड़ा वादन की प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती हैं। नगाड़ा युद्ध के वाद्यों के साथ बहुत प्रयोग किया जाता है। किन्तु आजकल राजस्थान के उत्सवों में इसका प्रचार अधिक है। नृत्य मण्डलियों में इसका प्रयोग संगति के लिए भी होता है। मंदिरों में इस वाद्य का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। उत्तरप्रदेश की नौटंकी में यह नक्कारा के नाम से प्रयुक्त होता है। तथा इसके बड़े भाग का पिछला हिस्सा कुछ नुकीला बनाया जाता है।

विमर्श–भारतीय संगीत के लेखक प्रो. कृष्णराव गणेश मूले एवं वाद्य प्रकाश के लेखक विद्याविलासी पंडित ने आडम्बर शब्द को वैदिक युगीन बताते हुए वीणा का ही एक भेद माना है। डॉ. लाल मणि मिश्र ने अपनी पुस्तक "भारतीय संगीत वाद्य" में आडम्बर वाद्य को वीणा के अन्तर्गत स्पष्टतः स्वीकार नहीं किया है। लेकिन जैन आगमों के टीकाकारों एवं कोशकारों ने आडम्बर शब्द का अर्थ पटह, नगाड़ा करते हुए अवनद्ध (वितत) वाद्य के अन्तर्गत स्वीकार किया है। इसलिए आडम्बर को अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत लिया गया है।

आमोट, आमोत पा. (आमोट, आमोत पा.) राज.-७७

आमोट, मंजीरा, मंजीर, मजीरा।

आकार–ताल वाद्य के सदृश।

विवरण–प्राचीन काल में यह वाद्य ताल से छोटा एवं ध्वनि में लगभग घुंघरूओं के समान होता था। यह कांसा, पीतल, फूल तथा अष्टधातु का बनाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता था, जिनका व्यास लगभग ४ अंगुल होता था। इसका मध्य क्षेत्र भी स्तनाकार और छिद्रयुक्त होता था। उस छिद्र से सुतली पिरोकर अंगुलियों में लपेट कर वादन किया जाता था। वर्तमान में यह वाद्य दो छोटी-गहरी गोल पट्टियों के सदृश पीतल तांबा आदि के मिश्रण से बनाया जाता हैं। प्रत्येक पट्टी का मध्य भाग प्याली के आकार का होता है, जिससे उनका पूरा भाग एक-दूसरे का स्पर्श कर सके।

बजाने की सुविधा के लिए दोनों मंजीरों के किनारे का भाग पतला होता हैं। धातुओं के मिश्रण, प्रकार, वजन, आकार आदि पर मंजीरे की ध्वनि निर्भर करती है।

एक विशेष प्रकार का नृत्य 'तेरा ताली' मंजीरों की सहायता से ही उत्पन्न हुआ है। कसकुट के बने मंजीरे कांशी कहे जाते हैं जो आकार में सामान्य मंजीरों से कुछ बड़े होते हैं।

लोक संगीत एवं भक्ति संगीत के साथ इसका विशेष प्रयोग होता है। मणिपुर एवं तिब्बत के निकटवर्ती क्षेत्रों में इसे आमोट कहते हैं।

आलिंग (आलिङ्ग) जीवा. ३/७८ राज. ७७

आलिङ्ग

आकार—गोमुखी के समान प्रतीत होने वाला एक अवनद्ध वाद्य, जिसे वादक अपने शरीर से आलिंगित करके बजाता था।

विवरण—वर्तमान में यह वाद्य प्राप्त नहीं है। इसके आकार-प्रकार एवं बजाने की विधि का स्पष्ट उल्लेख भी कहीं नहीं है। अनुमान के आधार पर श्री मनमोहन घोष ने नाट्यशास्त्र के अंग्रेजी अनुवाद में आलिंग्य को वादक के शरीर से आलिंगित रहने वाला वाद्य माना है। वी. चैतन्यदेव ने वाद्य यंत्र (पृ. ३५) में इसे एक बांह में दबाकर दूसरी ओर से बजाने वाला वाद्य कहा है।

विमर्श—डॉ. लाल मणि मिश्र ने अपने शोध प्रबंध भारतीय संगीत वाद्य पृ. ९०-९१ में आलिंग्य को स्वतंत्र वाद्य न मानकर मृदंग का ही एक हिस्सा माना है। श्री मनमोहन घोष एवं श्री मूले ने इसे स्वतंत्र वाद्य के रूप में स्वीकार किया है।

राजप्रश्नीय सूत्र ७७ में भी मुरज, मृदंग के बाद आलिंग शब्द का प्रयोग हुआ है, जो इसके स्वतंत्र वाद्य होने का प्रमाण है।

(विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य—भारतीय संगीत वाद्य)

कंसताल (कांस्यताल) निसि. १७/१३८ राज. ७७, जम्बू ३/३१

कांस्यताल

आकार—यह कांसे की कमलिनी के पत्र के आकार की होती है। इसका व्यास १३ अंगुल का होता है। इसके बीच दो अंगुल प्रमाण की गोलाई तथा एक अंगुल प्रमाण की गहराई वाली नाभि होती है।

विवरण—ताल वाद्य की भांति इसमें भी मध्य में छेद होता है। जिसमें अलग-अलग डोरी डालकर भीतर से गांठ लगा दी जाती है। ऊपर की ओर उसी डोरी में कपड़ा लपेटकर इस प्रकार बांध देते हैं कि वह दोनों हाथों की मुट्ठियों में पकड़ने के लिए मूठ का काम करें। इसके मुख्य बोल झनकर कहे गये हैं। प्राचीन तथा मध्य युगीन संगीत-ग्रंथों में इस वाद्य को घन वाद्य के अन्तर्गत लिया गया है। मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर, संगीत-विशारद आदि प्रायः सभी ग्रन्थों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। प्रायः देवी-देवताओं की स्तुति, मंदिरों एवं शोभायात्रा के समय तथा अन्य उत्सवों पर इसका प्रयोग किया जाता है।

विमर्श—अनेक संगीतज्ञों ने कांस्यताल को झांझ, झल्लरि का ही पर्याय माना है। किन्तु यह संगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि भक्त कवि कृष्णदास ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झांझ, झालर और मंजीरा का अलग-अलग उल्लेख किया है, जिससे यह पता चलता है कि ये तीनों वाद्य परस्पर भिन्न थे। राजप्रश्नीय सूत्र ७७ में भी झल्लरि, झांझ के बाद कांस्यताल शब्द का प्रयोग किया है, जो कांस्यताल को झांझ और झल्लरि से पृथक् करता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–संगीत विशारद, संगीत सार, संगीत दामोदर)

कच्छभी (कच्छपी) राज. ७७, जीवा. ३/५८८, जम्बू. ३/३१, ज्ञाता. १७/२२

कच्छपी वीणा

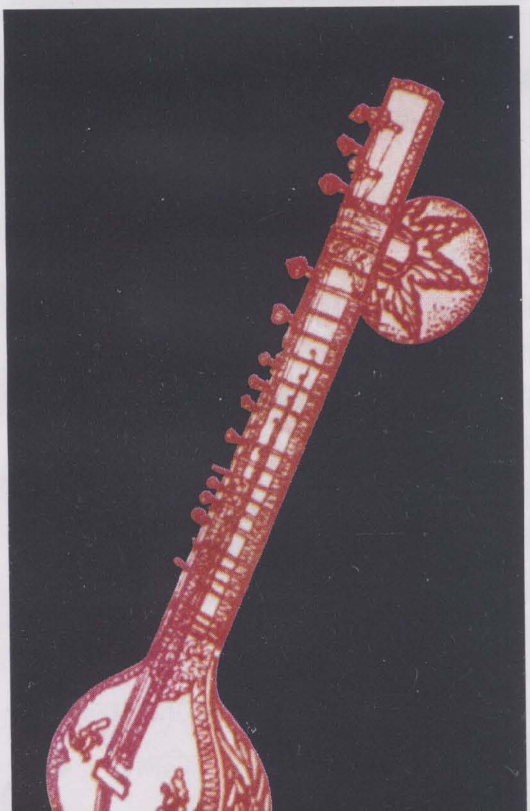

आकार–इस वाद्य का आकार फूले हुए कछुए की पीठ की तरह होता है। इसलिए इसको कच्छपी वीणा कहते हैं। इसके खोखले पेट पर चमड़ा मढ़ा होता है, जो ग्रीवा तक जाता है। कम लम्बाई वाले दंड के ऊपर एक अर्धचन्द्राकार मेरु लगा होता है, जिस पर होकर पांच तार दंड के दूसरे सिरे पर लगी खूंटी तक जाते हैं।

विवरण–बिना पर्दे एवं छोटी गर्दन वाली वीणाओं में सबसे प्राचीन कच्छपी वीणा थी, जिसे खींच कर बजाया जाता था। कुछ विद्वानों ने कछुवाबीन अथवा कछुआ के नाम से एक तत वाद्य का वर्णन किया है, जो प्राचीन कच्छपी वीणा से सर्वथा भिन्न सितार का ही एक भेद है।

प्राचीन गुफाओं, स्तूपों, मंदिरों आदि की मूर्तियों में चित्रित किये गये वाद्यों में कच्छपी वीणा के दर्शन होते हैं। आबानेर स्थित हरसत माता के मंदिर में संगीतज्ञा की एक मूर्ति के हाथ में स्थित वीणा प्राचीन कच्छपी वीणा की स्मृति को तरोताजा कर देती है।

विमर्श–निसि. १७/१३८ में कच्छपी को घन वाद्य के अन्तर्गत लिया है। निसि. के टीकाकार ने "चतुरंगुलो दीहो वा वृत्ताकृति" कहकर घन वाद्य ही स्वीकार किया है। किंतु ज्ञाता. १७/३२, राज. ७७ में कच्छपी को वीणा का वाचक माना है।

भरत नाट्य शास्त्र ३३/१५ में महर्षि भरत ने ततवाद्यों के अंग तथा प्रत्यंग वाद्यों के विवेचन में कच्छपी वीणा को प्रत्यंग वाद्य कहा है। श्री मनमोहन घोष, सुधाकलश एवं विद्याविलासी पंडित आदि संगीतज्ञों ने कच्छपी को वीणा का ही वाचक माना है। उक्त विमर्श से ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में कच्छपी नाम के दो वाद्य थे जो तत वाद्य के रूप में स्वीकृत थे। आधुनिक संगीतज्ञों ने कच्छपी को वीणा का वाचक माना है इसलिए यहां कच्छपी को वीणा के अर्थ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वीकार किया गया है।

(विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य—भारतीय संगीत वाद्य, वाद्य यंत्र)

कच्छभी (कच्छपी) निसि. १७/१३८

कच्छपी।

आकार—ताल सदृश

विवरण—यह वाद्य प्राचीन ताल वाद्य से आकार में कुछ छोटा होता है।

कांसा, पीतल, फूल तथा अष्ट धातु का बनता हैं जिसका व्यास लगभग चार अंगुल होता है। इसका मध्य क्षेत्र भी स्तनाकार होता है जहां एक छिद्र होता है जिसमें सूतली पिरोयी रहती है। उसको अंगुलियों में लपेट कर इसका वादन करते हैं। वर्तमान समय में विवाहादिक मांगलिक अवसरों पर ढोलक के साथ गान करती हुई ग्रामीण महिलाएं इसका वादन करती हैं।

विमर्श—निसि. १७/१३८ में कच्छपी को घन वाद्य के अन्तर्गत लिया है। निसि. चू. द्वि. ६१ अ में "चतुरंगुली दीहो वा वृत्ताकृति" कहकर इसको चार अंगुल व्यास वाला अथवा चार अंगुल बड़ा वृत्ताकृति वाद्य कहा है, जो उपरोक्त वाद्य विवरण के सदृश है। संभवतया ताल वाद्य के सदृश होने के कारण प्राचीन ग्रन्थकारों ने इसका अलग से उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय संगीत वाद्य)

कच्छभी (कच्छपी) राज.-७७, जीवा. ३/५८८, जम्बू. ३/३१

कच्छपी सितार, सरस्वती वीणा

आकार—उत्तर भारतीय वीणाओं के सदृश।

विवरण—यह वाद्य वीणा का ही एक परिवर्तित रूप है, जिसके नीचे एक चपटा तुम्बा लगा रहता है। तुम्बा ग्रीवा के एक ओर चिपका होता है और इसका ऊपरी भाग काष्ठफलक से ढका होता है, जो चपटा या थोड़ा सा फुला हुआ होता है। ग्रीवा से एक लम्बी दंड जुड़ी होती है, जिसे दंडी कहा जाता है। इसके ऊपर पीतल के उत्तल पर्दे लगे होते हैं, जिन्हें वांछित स्थान तक खिसकाया जा सकता है।

चपटा तुम्बा होने के कारण इस वाद्य को कछुवा सितार, कच्छपी सितार भी कहते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—वाद्य यंत्र)

कडंब, करंब पा. (कडंब, करम्ब पा.) राज. ७७

गंजीरा, खंजरी, कंजीरा (दक्षिण), कडंब (कश्मीर) दिमड़ी (महाराष्ट्र)

आकार—ढफ से छोटा।

विवरण—इस वाद्य में लगभग ३० सेन्टीमीटर व्यास का लकड़ी, पीतल या लोहे का बना एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढांचा होता है और यह एक खाल से मढ़ा होता है।

यह खाल इतनी खिंची रहती है कि इसको बजाते समय इसे ढ़ीला करने के लिए गीले कपड़े से पोंछते रहना पड़ता है।

वाद्य को अंगुली और हथेली का प्रयोग कर बजाया जाता है। खंजरी और ढक में केवल व्यास का ही अंतर उल्लेखनीय नहीं है। खास अंतर यह है की खंजरी में पीतल की छोटी-छोटी झांझ की जोड़ियां ढीली लगी होती हैं जो बजाने पर मधुर झंकार उत्पन्न करती हैं।

उपरोक्त खंजरी से छोटी बिना झांझ की खंजरी भी होती है जो लगभग वालिस्त भर का फासला रखकर हाथ में पकड़ी जाती है और दूसरे के द्वारा बजायी जाती है।

खंजरी भेड़, बकरी, बैल या भैंसे की खाल से बनती है लेकिन कंजीरा और छोटी खंजरी एक किस्म की छिपकली की खाल से बनती है। चूंकि चमड़ा वाद्य को बनाने के दौरान ही ढांचे पर कस कर मढ़ दिया जाता है और मिलाने की गुंजाइश नहीं होती इसलिए यह वाद्य बारीक संगीत के उपयुक्त नहीं होता।

यह राजस्थान में कालबेलिया और जोगियों की मंडली द्वारा बजाया जाता है। महाराष्ट्र में इसे दिमड़ी, उत्तर भारत में खंजरी, दक्षिण भारत में कंजीरा, गंजीरा और कश्मीर में कडंब के नाम से जाना जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–वाद्य यंत्र)

कणक (कनक) प्रश्नव्या. ४/४

कणक, तविल (दक्षिण), हरीतिकी।

आकार–मृदंग के सदृश।

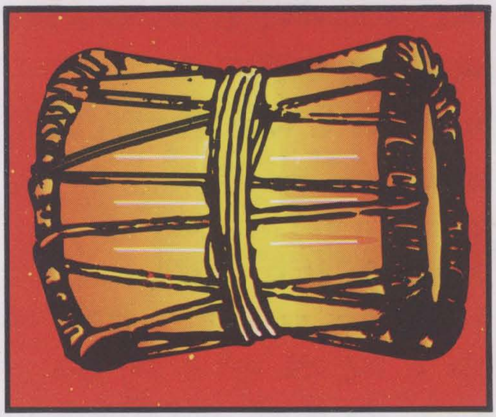

विवरण–दक्षिण भारत में शास्त्रीय संगीत सभाओं में प्रयुक्त होने वाला यह वाद्य अपनी अलग ही पहचान रखता है।

काष्ठ से निर्मित इस वाद्य का आकार कुछ छोटा और झिल्ली की पर्तें लगभग उसी नाप की होती हैं। झिल्ली छल्लों पर चढ़ी होती है, जो चमड़े की डोरियों से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। वादक एक ओर लकड़ी से दूसरी ओर अंगुलियों से बजाता है। इसे इतनी ताकत से बजाया जाता है कि अंगुलियों की रक्षा और आवाज का वांछित असर पैदा करने के लिए अंगुलियों के पोरों पर गोल पट्टियां बांध ली जाती है।

लोक भाषा में इसे कणक, तविल के नाम से जाना जाता है। मृदंगम् के समान पीपे के आकार का होने के कारण इसे हरीतिकी वाद्य भी कहते है।

कणित (क्वणित) जीवा. ३/५८८

पावा, वंश-पावा, क्वणिता।

आकार–बांसुरी के सदृश।

विवरण–यह वाद्य नाथेन्द्र वंशी का एक भेद है। इसका बांस नौ अंगुल का होता है। इसके मुख पर बांस की पत्ती लपेट कर लोक-रीति से इसका वादन किया जाता है। इसे वंश-पावा भी कहते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–संगीत रत्नाकर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करड़ (करट) जीवा. ३/५८८ राज. ७७

करटा, करट, करटी।

आकार—ढोल के समान प्रतीत होने वाला।

विवरण—यह वाद्य विजयसार की काष्ठ द्वारा बनाया जाता है। जिसका पिण्ड २४ या २१ अंगुल का होता है। इसकी परिधि ४० अंगुल की होती है। दोनों मुखों पर चढ़ाव की रीति से तीन-तीन तांत के तार बांधे जाते हैं तथा दोनों मुखों पर काठ या लोहे के कड़े लगाकर उन्हें कोमल चमड़े से लपेट दिया जाता है। उन कड़ों में १४-१४ छेद करके फिर करटा के दोनों मुख ढोल की भांति मढ़ दिये जाते हैं। उन १४ छेदों में बीच-बीच के छेदों को छोड़कर उसे कसने के लिए लिए चमड़े की बद्धी लगाई जाती है। उसके खाली छिद्रों में फिर पतले चमड़े की बद्धी पहले की ही भांति लगाई जाती है, जिससे बद्धियां चढ़ाव-उतार युक्त हो जाती हैं। इसके दोनों कड़ों के पास से एक तीन अंगुल चौड़ी चमड़े की पट्टी बांधी जाती है जिसे गले में लटका कर अथवा कमर से बांधकर बेंत की डण्डी से, जो अग्र भाग से मुड़ी हुई, लगभग एक हाथ की होती है, हाथ में पकड़ कर वादन-क्रिया करते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय संगीत वाद्य)

करटि, करड़ी (करटी) जीवा. ३/५८८

करटा, करट करटी।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—करड़)

करधाण (करध्मान) जम्बू. ३/३१

कम्रा, कम्रिका, कम्राट, करधान, काष्ठताल।

आकार—कठताल के सदृश।

विवरण—विभिन्न आकृतियों व किस्मों में विकसित यह वाद्य प्रायः सभी प्रान्तों में पाया जाता है। इसे लोक संगीत में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसका निर्माण खेर की लकड़ी या ठोस बांस के टुकड़ों से होता है। चार भागों में विभक्त यह वाद्य लगभग दो अंगुल चौड़ा व बारह अंगुल लम्बा होता है।

इसका एक भाग अंगूठा तथा तर्जनी के मध्य तथा दूसरा तर्जनी और मध्यमा के बीच इस प्रकार दबाया जाता है जिससे दोनों भागों के भीतरी किनारे आसानी से एक-दूसरे का स्पर्श कर सकें। इसी प्रकार दोनों हाथों में चारों हिस्सों को पकड़ कर मणिबंध को हिलाते हुए वादन किया जाता है। इसके वादन से किट-किट की ध्वनि निकलती है।

आजकल इसे धातु का भी बनाते हैं। बंगाल में इसका अधिक प्रचार देखने को मिलता है। आधुनिक युग में प्रचलित करधान बीच में दो अंगुल विस्तार के होते हैं तथा दोनों अग्रभागों तक क्रमशः पतले तथा नुकीले हो जाते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—संगीत सार)

कलताल (करताल, तलताल पा.) जम्बू. ३/३१

करताल, खड़ताल, कठताल, राम गिड़गिड़ी, गिड़गिड़ी (वज्र)

आकार—लगभग पांच इंच से दस इंच लम्बे एवं लगभग दो इंच चौड़े दो चतुर्भुज आकार के लकड़ी के टुकड़े जिनमें झनझनाहट करने वाले लटकन लगे होता हैं।

विवरण—करताल एक घन वाद्य है, जिसमें खंजरी के समान पीपल की दो छोटी झांझों के दो स्थानों पर एक-एक जोड़ी लगी रहती है। यह चार टुकड़ों में होती है जिसमें दो टुकड़े दोनों हाथों के अंगूठों में तथा दो दोनों हाथों की उंगलियों में पहनकर बजाते हैं। इसी उद्देश्य से दो टुकड़ों के मध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगूठा प्रवेश के योग्य छिद्र रहता है तथा दो टुकड़ों में चार अंगुलियां प्रवेश कर सकें, इतना बड़ा छेद रहता है।

भिन्न-भिन्न लयों के प्रदर्शन के लिए भक्ति संगीत तथा कुछ नृत्यों में इसका प्रयोग होता है। राजस्थान में करताल तन्दूरा और एकतारा के साथ प्रयोग की जाती है। महाराष्ट्र में एक विशेष प्रकार की करताल होती है जिसे चिम्पड़ी कहते हैं। जो प्रातःकालीन चारण (वासुदेव) के हाथ में देखी जा सकती है।

करताल वादन में तीव्रता और विचित्रता के लिए लकड़ी की कंघी और अनाज फटकने वाले सूप को भी दाने के साथ प्रयोग में लाते हैं।

कलसिया (कलशिका) राज. ७७

कलश, पंचमुख वाद्य, त्रिमुख वाद्य।

आकार—कलश जैसा।

विवरण—इस वाद्य का मुंह चमड़े से मढ़ा होता था, जो एकमुखी से लेकर पंचमुखी तक होता था, जिसमें घट के मुख के स्थान पर दो, तीन अथवा पांच मुख बनाये जाते थे। इसमें बीच का एक मुख बड़ा तथा शेष मुख उससे कुछ छोटे आकार के होते थे। इस प्रकार का एक पंचमुखी घट आज भी मद्रास म्यूजियम में रखा है। इसके वादन की विधि का उल्लेख बहुत स्पष्ट प्राप्त नहीं होता। (विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय संगीत वाद्य)

किणिय, किणित (किणित) राज. ७७

जम्बू.३/३७

ढ़ोल ढक

आकार—सामान्यतः बेलनाकार।

विवरण—सम्पूर्ण भारत में पाए जाने वाला यह वाद्य बेलनाकार से लेकर पीपे सदृश तक होता है। जो अन्दर से पोला एवं दोनों ओर चमड़े से मढ़ा रहता है। इसे लोहे की सीधी और चपटी परतों को आपस में जोड़कर बनाते हैं। इन परतों को जोड़ने के लिए लोहे और तांबे की कीलें बारी-बारी से प्रयोग की जाती हैं। इस वाद्य पर बकरे की खाल मढ़ी रहती है। वाद्य को कसने-मढ़ने के लिए कुण्डल अथवा गजरे का प्रयोग किया जाता है। इसे कसने के लिए डोरी का प्रयोग किया जाता है, जिसमें पीपल के छल्ले पड़े होते हैं। इसका नर भाग डंडी के द्वारा, मादा भाग हाथ से बजाया जाता है। शायद ही ऐसा कोई प्रान्त हो जहां ढोल का कोई न कोई रूप प्रचलित न हो। ढोल मुख्य रूप से त्यौहारों के अवसर पर बजाया जाता है। यह नृत्य मंडलियों में भी संगति करने के प्रयोग में लाया जाता है।

प्राचीन समय में खतरे का सामना करने एवं वध के समय नगर के मध्य में इसका वादन किया जाता था। नेपाल एवं अनेक आदिवासी क्षेत्रों में आज भी पशुवध के अवसर पर इसे बजाया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमर्श–जैनागमों के अतिरिक्त 'किणित' शब्द का उल्लेख वाद्य के अर्थ में वेदों एवं संगीत ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता। व्यवहार भाष्य ४/३ टी. पृ. २१ में इसे "वध के समय नगर के मध्य बजाए जाने वाला वाद्य" कहा है। लगता है किणित वाद्य का नाम प्रयोग के आधार पर रखा गया। इसीलिए प्रस्तुत शब्द को ढोल का पर्याय माना गया।

किरिकिरिय (किरिकिरिय) आ. चू. ११/३

किरिकिरिय, किरिकिट्टक, शुक्तिवाद्य।

आकार–सर्पाकार।

विवरण–यह ८ सेन्टीमीटर से अधिक चौड़ा तथा एक मीटर से कुछ ज्यादा लम्बा एक घनवाद्य है। इसे कांसे अथवा लोहे से बनाया जाता है, जिसमें एक सिरे की शक्ल सांप के फन जैसी होती है। इसके संपूर्ण शरीर में एक-एक अंगुल दूरी पर आधे यव प्रमाण उठी हुई रेखाएं होती हैं। एक लोह कोण से इन रेखाओं का आड़ा–तिरछा स्पर्श करते हुए वादन किया जाता है। इसमें से किरकिर, किरकिर की ध्वनि उत्पन्न होती है।

कर्नाटक के १३ शताब्दी के अनेक हुइसल मंदिरों में किरिकिट्टक वादक की अद्‌भुत प्रतिमाएं देखी जा सकती हैं।

सारंगदेव ने संगीत-रत्नाकर ६/१२०० में लोक प्रचलित वाद्य किरिकिट्टक को ही शुक्तिवाद्य कहा है। कबीलाई एवं लोक-नृत्यों में इस वाद्य का विशेष उपयोग किया जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य– संगीत रत्नाकर)

कुंभा (कुम्भा) राज. ७७

कुंभ, घड़ा, मटकी, कलश

आकार–लोक संगीत में इस वाद्य की किसमें, चिकनी मिट्टी या धातु की बनाई जाती हैं। इस वाद्य रूपी घड़े का पेट बड़ा, गर्दन लम्बी एवं मुंह संकुचित होता है।

विवरण–इस वाद्य को दो प्रकार से बजाया जाता है। पहले प्रकार में घट को अपनी गोद में सीधा रखकर हाथ की हथेली से उसका मुख बन्द करते तथा खोलते हैं, जिससे घट के भीतर व्याप्त वायु पर दबाव पड़ता है और उसमें गंभीर ध्वनि उत्पन्न होती है। यह ध्वनि तबला के डुग्गी अथवा ढोलक के वाम मुख के अनुरूप होती है। दाहिने हाथ की उंगलियों से अथवा धातु की किसी कठोर वस्तु को चुटकी में पकड़ कर घट पर प्रहार करते हैं, जिससे ताल-वाद्यों के दाहिने मुख की ध्वनि का भास होता है। दक्षिण भारत में इसे बजाने के लिए वादक अपनी कमीज उतारकर जमीन पर बैठता है। घड़े का मुंह वादक के पेट से लगा रहता है तथा घड़ा उसकी गोद में रखा रहता है। इसे मुंह पर नहीं बजाया जाता। घटम्-वादक घड़े के मुंह के सामने स्थित अपने पेट का कौशलपूर्ण उपयोग करके घटम् से विविध ध्वनियों को उत्पन्न कर सकता है।

इस प्रकार के वादन से दक्षिणी मृदंग के सभी बोल बजाये जाते है। दक्षिणी संगीत की संगोष्ठियों में कभी-कभी ताल-वाद्य गोष्ठी का भी आयोजन होता है जिसमें मृदंगम्, मंजीरा (खंजरी) तथा घटम् (घट) तीनों के वादक क्रमशः एक-दूसरे के बाद वादन करते है। तथा कठिन एवं द्रुत गति के बोलों का चमत्कार दिखाते हैं। दक्षिणी शास्त्रीय कण्ठ संगीत के साथ संगति में भी प्रायः घट का प्रयोग होता है।

उत्तर भारत में इस वाद्य को लोक वाद्य की श्रेणी में और दक्षिण भारत में घटम् के नाम से शास्त्रीय वाद्यों में गिना जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुक्कययं (कुक्कययं) सूय. १/४/३८

तुंबवीणा, खुंखुणक, रबाब।

आकार—आधुनिक सरोद तथा सारंगी के मध्य का वाद्य।

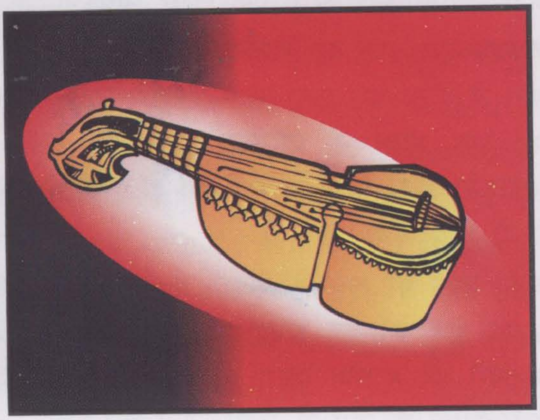

विवरण—यह एक बिना पर्दे की और छोटी ग्रीवा वाली वीणा है। कश्मीर से लेकर अफगानिस्तान तक इसका प्रचार देखने को मिलता है, जहां इसके तार को खींच कर बजाते हैं। इस वीणा में दो से सात तक तार होते हैं। 'आइने अकबरी' में रबाब की षट् तंत्रीय, बारह तंत्रीय और अठारह तंत्रीय वाला भी कहा है।

कश्मीर में आजकल प्रचलित रबाब पोली लकड़ी का बना होता है। स्वर-पेटी खाल से ढकी होती है। दंड में खूंटी लगी होती है। इस दंड पर एक पतला मेरु होता है जिसके ऊपर तांत की छह तंत्रीयां होती हैं जो खूंटीयों से कसी जाती हैं। इनके अतिरिक्त धातु की ग्यारह तंत्रीयां होती हैं, जो अनुगूंज का कार्य करती हैं। दंड के आर-पार इसके दूर वाले सिरे के तीन तांत बंधी रहती हैं, जो सुरों की स्थिति की ओर इंगित करती हैं। बाद में वाद्यों में इसी प्रक्रिया को धातु के पर्दों के रूप में विकसित कर लिया गया होगा।

राजस्थान के लोक वाद्य में प्रयुक्त होने वाला रबाब मुख्यतः दो प्रकार का होता है—गोल तुम्बे का और चतुर्भुज तुम्बे का। इसमें चार मुख्य तार होते हैं जो तांत के बने होते हैं। एक लोहे का तार होता है, जिसे चिकारी की भांति प्रयोग किया जाता है। सिंध प्रांत में इसे खुंखुणक भी कहते हैं। सूत्रकृतांग टी. पृ. ११६ में ''कुक्कययं ति खुंखुणकम्'' कहकर खुंखुणकम् कहा है। जैन रामायण में भी ''खुणण-खुणण बाजै रबाब'' कहकर रबाब की पहचान दी है।

कुक्कयय (कुक्कयय) सू. १/४/३८

झुनझना, झुंझनी, खुलखुला, खुंखुना, गिलकी।

आकार—नारियल सदृश।

विवरण—नारियल का खोल झुनझुना जैसे लोक-वाद्य की ही एक किस्म है। थोड़े से बीज या कंकरी अंदर डालकर इसके मुंह को बंद कर दिया जाता है। नारियल के खोपरे में आमतौर पर एक मूठ भी लगी होती है जिसे पकड़कर इसे हिला-हिलाकर बजाया जाता है। ये सभी आदिम और प्राकृतिक झुनझुने निश्चय ही उन धातु तथा लकड़ी के बने परिष्कृत झुनझुनों के आरंभिक रूप हैं, जो प्रायः बच्चों के झुंझनी, खुलखुला, खंखुना और गिलकी नामक खिलौनों के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—वाद्य यंत्र)

कुतुंब, कुंत्तुंबक (कुस्तुम्ब, कुस्तुम्बक) राज. ७७, जीवा. ३/७८

कुस्तुम्ब, गोपुच्छा, यवाकृति।

आकार—मृदंग सदृश।

विवरण—यह वाद्य मृदंग जाति का ही एक अनवद्ध वाद्य था, जो एक सिरे पर काफी चौड़ा और दूसरे सिरे पर काफी संकरा होता था। बंगाल में प्रचलित श्री खोल के सदृश इसमें कई पर्तों वाले दो मुख होते थे। इसको भी हाथ से बजाया जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। वर्तमान में यह वाद्य प्राप्त नहीं होता। (विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय वाद्य गलु)

कुतुंबर (कुस्तुम्बर) राज. ७७

कुस्तुंबर, तुम्बकनारी, घुमट।

आकार—सुराही सदृश।

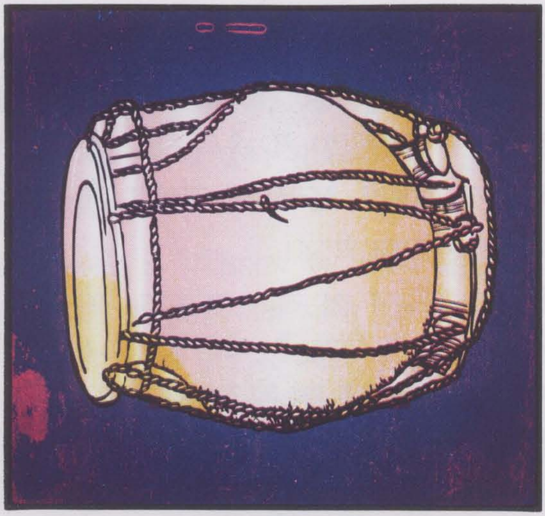

विवरण—यह वाद्य **दुर्दुर वाद्य** का ही एक विशेष रूप है, जिसका प्रकार एक बृहद् सुराही सदृश होता है। यह कश्मीर के लोक वाद्यों में अपना विशेष स्थान रखता है। इसका ऊपरी हिस्सा चमड़े से ढका होता है और निचला भाग खुला होता है। इसको गोद में खड़ा रखा जाता है और अंगुलियों से बजाया जाता है। गोवा और महाराष्ट्र का **घुमट** अधिक गोल और छोटी गर्दन वाला हैं। इसमें निचला भाग खुला होता है, जिस पर खाल कसकर मढ़ी जाती है और गर्दन का मुंह खुला रहता है।

कश्मीर में इसे तुम्बक नारी एवं तिब्बत के निकटवर्ती क्षेत्रों में कुस्तुम्बर नाम से जाना जाता है। (विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—वाद्य यंत्र)

खरमुही (खरमुखी) निसि. १७/१३९, राज. ७७, पज्जो. ७५, ६४, दसा. १०/१७, औप. ६७, जीवा. ३/५८८

खरमुखी, काहला, भूपाड़ो।

आकार—तीन हाथ लम्बा एक सुषिर वाद्य।

विवरण—इस वाद्य का निर्माण तांबा, चांदी अथवा सोने से होता था। फूंक मारकर बजाए जाने वाला यह वाद्य भीतर से खोखला होता था। इसकी मुखाकृति धतूरे के फूल के सदृश होती थी। बीच में दो छिद्र बनाये जाते थे।

वादन करने पर हाथी के सदृश 'हूं, हूं, हाहू' शब्द उत्पन्न होते थे। इसे विवाह आदि सभी मांगलिक अवसरों पर बजाया जाता था। लौकिक भाषा में इसे भूपाड़ों के नाम से जाना जाता था।

विमर्श—खरमुखी एक प्राचीन सुषिर वाद्य है। इसके निर्माण एवं आकृति के बारे में भिन्न-भिन्न मत प्राप्त होते हैं। संगीत रत्नाकर और संगीत सार के अनुसार इस वाद्य का निर्माण चांदी, तांबा अथवा सोने से होता था। मुखाकृति धतूरे के फूल के समान होती थी। संगीत समयसार ६/१३१-१३२ के कर्त्ता पार्श्वदेव ने भी लगभग इसी बात की पुष्टि की है। किन्तु अल्प परिचित शब्द कोश एवं राज. टी. पृ. ४९-५० में **''खरमुही—काहला तस्य मुहत्थाणे खरमुहाकारं कट्ठमयं मुहं कज्जंति''** कहकर काहला को काष्ठनिर्मित एवं खरमुखाकार बताया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि काहला काष्ठ निर्मित भी होते थे।

गोमुही (गोमुखी) राज. ७७, ठाणं ७/४२, अनु. ३०१

गोमुखी, नरसिंघा (म. प्र.), रणसिंघा (हिमाचल), बांकया, वारगु (राज.) बांके (कर्नाटक)

आकार—अंग्रेजी के 'एस' अक्षर के आकार का वाद्य, देखने में इसका मुख गाय के सींग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(गोविषाण) सदृश लगता है।

विवरण–यह वाद्य भैंसे और हिरण के सींग का बना होता है। अथवा पीतल आदि धातुओं से बनाया जाता है। तीन भागों में विभक्त यह वाद्य फूंक मारने पर जोर से आवाज करता है।

इस वाद्य के कई नाम हैं–उत्तर में तूरी, गोमुखी, राजस्थान में बांकया अथवा वारगु, कर्नाटक में बांके, मध्यप्रदेश में रणसिंघा और हिमाचल प्रदेश में नरसिंघा। इसका एक और रूप गुजरात में नागफनी कहा जाता है। जैसा कि नाम से प्रकट है कि वाद्य नाग के आकार का होता है और मुख की झालर फन जैसी होती है जिसका मुख खुला और दो जीभ वाला होता है।

गोहिया (गोधिका) निसि. १७/१३८, ठाणं ७/४२, अनु. ३०१, आ. चू. ११/३

गोधा, गोधिका, गारसिया की लेजिम।

आकार–धनुष के समान प्रतीत होने वाला वाद्य।

विवरण–बांस का एक बड़ा धनुषाकार वाद्य, जिसमें लोहे की जंजीर और पीतल की छोटी गोल पत्तियां लगी रहती है। इसके हिलाने पर झनझनाहट की ध्वनि उत्पन्न होती है। भांड जाति एवं गारसिया जाति के लोग इसे बजाते हैं।

विमर्श–डॉ. लालमणि मिश्र ने अपने शोध-प्रबंध ''भारतीय संगीत वाद्य'' में गोधा वाद्य को सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत लिया है। बी. चैतन्यदेव ने गोधा को वाद्य यंत्र में वीणा के अन्तर्गत लिया है। अनुयोगद्वार सूत्र के टीकाकार ने टी. पृ. १२९ पर ''चर्मावनद्धवाद्य-विशेष'' कहकर इसके अवनद्ध-वाद्य होने का संकेत दिया है। उक्त वर्गीकरण सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि निसि. १७/१३८, आ. चू. ११/३ में गोहिया शब्द को घनवाद्य के अन्तर्गत लिया है। आचारांग के टीकाकार ने टी. पृ. ४१२ में इसकी वादन-विधि का संक्षिप्त विवरण देते हुए लिखा–''गोधिका-भाण्डानां कक्षा-हस्तगतातोद्य विशेषः''। भांडों द्वारा कांख और हाथ में रखकर बजाये जाने वाला वाद्य। अतः इसे घन-वाद्य के रूप में स्वीकार किया गया है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–राजस्थान का लोक संगीत)

घंटा (घण्टा) प्रश्न. ४/४ भग. ९/१४१, आ. चू. १५/२८

घण्टा

आकार–पीतल, जस्ता और तांबा आदि धातुओं के मिश्रण से बना भारी और मोटे दल का वाद्य, जिसके मध्य भाग में एक छोटी-सी घुण्डी लटकी रहती है, जो घंटे के भीतरी भाग पर आघात करती है।

विवरण–आधुनिक युग में घंटों के विभिन्न आकार-प्रकार देखने को मिलते है। प्राचीन काल में घंटों का स्वरूप प्रायः एक समान था।

घन-वाद्य के अन्तर्गत ''संगीत-शास्त्रों'' में जिस घण्टा-वाद्य का वर्णन मिलता है, वह आज भी मंदिरों में आरती के समय पुजारी के बाएं हाथ में देखा जा सकता है। शास्त्रों में वर्णित प्रकार से कुछ छोटा होने के कारण आजकल प्रायः इसे 'घण्टी' कहा जाने लगा है। इस घण्टी अथवा घण्टे का शास्त्रीय संगीत से कोई संबंध नहीं है। प्राचीन ग्रंथों में घंटा का शास्त्रोक्त रूप इस प्रकार था :–

प्राचीन घण्टा कांसे का होता था जो आठ अंगुल ऊंचा होता था। इसके मुख की चौड़ाई चार अंगुल की होती थी जो गोल रहता था। इस मूल पिण्ड में एक छिद्र रहता था जिसमें एक शलाकानुमा गोल दण्ड आवश्यकतानुसार पतला या मोटा जड़ दिया जाता था। इसके निचले हिस्से में एक छोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कड़ा रहता था। इस दंड की लम्बाई आठ अंगुल होती थी। इसके ऊपरी सिरे पर कमल के फूल का आकार बनाकर गरूड़, हनुमान अथवा अन्य किसी इष्ट देवता की मूर्ति बना दी जाती थी, निचला सिरा, जो मुख्य घंटा के भीतर रहता था तथा जहां कड़ा बना रहता था वहां चार से छह अंगुल तक लम्बा एक लोहे का आंकड़ा लटका दिया जाता था जिसके निचले सिरे पर एक गोल दोलक रहता था। जब घण्टा हाथ से हिलाया जाता था तब वह दोलक घण्टा के दोनों भागों पर चोट करता था जिसकी मधुर ध्वनि वातावरण में सात्त्विक भाव भर देती थी। प्रायः आज भी सभी मंदिरों में घंटा लगा रहता है, जिसे भक्तजन मंदिर में प्रवेश करते समय बजाते हैं।

घंटिया (घण्टिका) पज्जो. ७४, राज. १७,१८, जीवा. ३/३०५, प्रश्न. १०/१४

घर्घरिका, घंटिका, क्षुद्रघंटा, घुंघरू।

आकार–किसी भी धातु की गोल घंटिया, जिनके अन्दर छोटी काली मिर्च के बराबर लोहे के टुकड़ें या छोटे पत्थर के टुकड़ें रहते है। इनका आकार अंगूर से लेकर बेर तक का होता है।

विवरण–प्राचीन तथा मध्यकाल में इन घुंघरुओं के नाम क्षुद्रघण्टिका, घर्घरिका, मर्मरा, घुंघरा आदि प्रचलित थे। इन्हें बनाने के लिए लोहा, कांसा, पीतल, फूल इत्यादि धातुओं का प्रयोग होता था।

घोड़े अथवा बैल के गले में डालने वाले घुंघरू बड़े होते हैं तथा नृत्य में पहने जाने वाले घुंघरू छोटे होते हैं जिन्हें मालाकार पिरो कर पैरों में पहनते हैं।

बड़े गोलाकार घुंघरू जो चमड़े की पट्टी पर बंधे रहते हैं। इनको शरीर पर पेटी की तरह बांधते हैं। राजस्थान में इनका प्रयोग भैरों जी के भोपाओं द्वारा होता है जो शरीर के निचले भाग को हिलाकर इन घुंघरुओं से झन-झनाहट की ध्वनि निकालते हैं और उसी के साथ गाते हैं। इस प्रकार के घुंघरू गाय और बैलों के गले में भी बांधे जाते हैं।

कुछ लोग तबला-वादन के समय एक हाथ में घुंघरू बांधकर इस तरह वादन करते हैं, मानों दो व्यक्ति अलग-अलग बजा रहे हों। छोटे आकार के चांदी के घुंघरुओं से पैरों का जो जेवर बनाया जाता है, उसे पायल, पायजेब या पैजनियां कहते हैं। घुंघरू के बिना किसी भी नृत्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

चित्तवीणा (चित्रवीणा) राज. ७७, ज्ञाता. १७/२२

सप्ततंत्री वीणा, चित्रा वीणा, रबाब

आकार–अंगुलियों से बजाये जाने वाली सप्ततंत्रीय वीणा, जो देखने में स्वर-मंडल वीणा की भांति होती है।

विवरण–महर्षि भरत के समय से पहले तथा बाद में निर्मित गुफाओं, मंदिरों तथा स्तूपों आदि की मूर्तियों में चित्रित वाद्य-यंत्रों को देखने से ऐसा पता चलता है कि उस समय चार-पांच प्रकार की वीणाओं का चित्रण ही विशेष रूप से किया गया है, महर्षि भरत ने विपंची तथा चित्रा वीणाओं को प्रमुख माना है। इसलिए उस काल में निर्मित प्रस्तर मूर्तियों में चित्रित वीणाओं में सर्वाधिक विपंची तथा चित्रा के दर्शन किये जा सकते हैं। चित्रा के सात तारों को किस प्रकार मिलाया जाता था, यह स्पष्ट पता नहीं चलता।

चित्रा वीणा का प्रचार किन्नरी तथा एकतंत्री वीणा के कारण लगभग सातवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक मंद पड़ता गया, जो लगभग चौदहवीं शताब्दी के आस-पास से रबाब के नाम से फिर सामने आई और सेन वंशजों के द्वारा अपनाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकी। चित्रा वीणा के इस रबाब रूप में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फिर परिवर्तन आना प्रारम्भ हुआ जिसके कारण सुरसिंगार तथा सरोद नामक वाद्य बने। तत वाद्यों में सरोद का वर्तमान में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य--भारतीय संगीत वाद्य, भरत नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकार)

छब्भामरी (षड्भ्रामरी) राज. ७७, ज्ञाता.१७/२२

षड्भ्रामरी, मेमेराजन, वक्षवीणा

आकार--आधुनिक गिटार से मिलता-जुलता वाद्य।

विवरण--यह एक प्राचीन वीणा थी। वक्ष वीणा के नाम से वर्तमान में प्राप्त होने वाली यह वीणा षड्भ्रामरी का ही एक परिवर्तित रूप है। यह वाद्य बांस की ग्रीवा पर चार से छह पर्दे लगाकर बनाया जाता है। दूर-दूर लगे दो तारों को इन पर्दो के ऊपर दबाया जाता है। पहला तार सुर निकालता है, दूसरा उसका अनुगमन करता है। उसके नीचे दो कटे हुए तुम्बे के पर्दे लगे रहते हैं। इस वाद्य को, तुम्बों के खुले सिरे को अपने शरीर की ओर रखकर पकड़ा जाता है। तुम्बे को इसके विपरीत दबाया और छोड़ा जाता है, जिससे ध्वनि को कम या अधिक किया जा सके। तार बायें हाथ से रोके और दांये हाथ से छोड़े जाते हैं। इस वाद्य को मेमेराजन भी कहा जाता है।

झंझा (झञ्झा) राज. ७७

झांझ

आकार--दो बड़े चक्राकार चपटे टुकड़े जिनके मध्य भाग में छोटा सा गड्ढा होता है, जो देखने में तश्तरी सदृश लगते हैं।

विवरण--आकार व धातु की भिन्नता के आधार पर इसकी अनगिनत किस्में हैं। ८ से १६ अंगुल व्यास वाले धातु की तश्तरीनुमा बनावट को झांझ कहते हैं। इनके मध्य में डोरी निकालकर तथा उसपर कपड़ा बांधकर हाथ से पकड़ने योग्य कर लेते हैं। फिर झांझ को आपस में किनारों पर अथवा एक किनारे से दूसरे की सतह पर अथवा दोनों को सपाट सतहों पर टकराकर बजाया जाता है। इनमें झनझनाहट भरी ध्वनि उत्पन्न होती है। इसे मुख्यतया ताशा और बड़े ढोल के साथ बजाते हैं। शैलानी गायक, मंडलियों, हरिकथा गाने वाले कलाकारों, भक्ति सभाओं, नर्तकों आदि के साथ यह वाद्य देश के हर भाग में पाया जाता है।

प्राचीन समय में इसे आघाटी के नाम से जाना जाता था।

झल्लरि (झल्लरी) राज. ७७, ठाणं ७/४२, दसा. १०/१७, ठाणं ४/३४४, १०/४३, अनु. ३०१, निसि. १७/७३६, औप. ६७

झल्लरी, भाण, चक्रवाद्य, करचक्र।

आकार--वलयाकार एवं चमड़े से मढ़ा हुआ अवनद्ध वाद्य।

विवरण--यह वाद्य १० अंगुल मोटा एवं ४ अंगुल लम्बा होता है। इसका बीच आर-पार से पोला होता है। एक अंगुल के दल वाले इस वाद्य के एक मुख को चमड़े से मढ़ा जाता है। बजाते समय चमड़े को पानी से भिगो कर बांएं हाथ से उसका किनारा दबाकर दाहिने हाथ से बजाया जाता है।

विमर्श--संगीत रत्नाकर वाद्याध्याय श्लोक(११३९) में झल्लरी के साथ-साथ इसका एक छोटा रूप भाण के नाम से प्रचलित था, ऐसा उल्लेख मिलता है। इसी झल्लरी और भाण को ही संगीत पारिजात में चक्रवाद्य अथवा करचक्र के नाम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबोधित किया गया है। इसलिए झल्लरी के पर्यायवाची नामों में भाण, करचक्र, चक्रवाद्य का समावेश किया गया है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–भारतीय संगीत वाद्य, संगीत रत्नाकर)

झल्लरि (झल्लरी) राज. ७७, ठाणं ७/४२, दसा. १०/१७, निसि. १७/७३६

झालर, झालरि, जय घंटा।

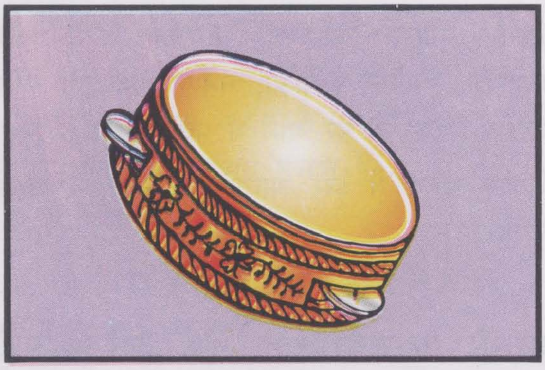

आकार–चक्राकार थाली, जो पीतल, जस्ते और तांबे के मिश्रण से बनाई जाती है।

विवरण–आधुनिक युग में यह वाद्य प्रायः हिन्दू मंदिरों में आरती के समय प्रयोग में लाया जाता है, जिसे जय घंटा कहा जाता है।

संगीत रत्नाकर ६/११९०-११९१ के अनुसार–जय घंटा कांसे का होता था जो समतल, चिकना तथा गोल होता था। मोटाई आधे अंगुल के बराबर होती थी। इसके वृत्त के किनारे पर दो छिद्र होते थे जिनमें डोरी डालकर लटकाने योग्य बना लिया जाता था। इसे बांएं हाथ में पकड़कर दाएं हाथ में कोई कठोर वस्तु लेकर बजाया जाता था, जिसे लौकिक भाषा में झालरि, झालर भी कहते थे। इसी का बृहद् रूप महा घंटा होता था, जो कांसे अथवा अष्टधातु से निर्मित किया जाता था।

विमर्श–संगीत सार, संगीत रत्नाकर और जैन टीकाकारों ने झल्लरि को चर्मावनद्ध वाद्य के अन्तर्गत लिया है। बहुत संभव है कि प्राचीन काल में झल्लरि अवनद्ध एवं घनवाद्य दोनों के रूप में विकसित हो इसलिए इसका घनवाद्य और अवनद्ध वाद्य के रूप में वर्णन किया गया है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–संगीत सार, संगीत पारिजात)

झोडय (झोडय) निसि. १७/१३७

झोडय वीणा, एकतंत्रीय वीणा, घोष वीणा, घोषवती वीणा, ब्राह्मी वीणा, घोषक वीणा।

आकार–एकतारा सदृश।

विवरण–यह एक अति प्राचीन वीणा थी, जिसका उल्लेख प्रायः सभी संगीत ग्रंथों में मिलता है। यह वीणा मध्यकाल के आस-पास एक तंत्री वीणा के नाम से प्रसिद्ध हो गई, जिसे प्राचीन काल में झोडय, घोष, घोषक, घोषवती, ब्राह्मी आदि नामों से जाना जाता था।

एकतारा और एकतंत्री वीणा–दो अलग-अलग वाद्य हैं। दोनों एक तार वाले होते हुए भी प्रयोग में सर्वथा भिन्न हैं। प्राचीन एकतंत्री का विधिवत् वादन होता था, जिससे सभी स्वरों को निकाला जाता था। किन्तु वर्तमान एकतारा केवल एक ही स्वर उत्पन्न करता है।

इस वीणा का दंड लम्बाई में लगभग १४० सेमी. होता था और दंड के नीचे एक तुंबा लगाया जाता था। तुइला की भांति यह वाद्य भी सीने के आस-पास रखा जाता था। तांत से बनी तंत्री अथवा तार को एक हाथ से खींचा जाता था तथा दूसरे हाथ में बांस का एक कोमल टुकड़ा कर्मिका रहता था, जिसे तंत्री के ऊपर दबाया और खिसकाया जाता था। एक तंत्री पर एक बड़ा मेरु तथा तांत के नीचे बांस का एक मुलायम टुकड़ा होता था, जो जीवा की तरह काम करता था। संगीत शास्त्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में इसकी वादन विधि का विशद वर्णन किया गया है।

डमरुह (डमरुक) निसि. १७/१३६

डमरु, बुदबुदके, कुडुकुडुप्पे (दक्षिण भारत), नगाचंग (तिब्बत)

आकार—रेत घड़ी, बालु घड़ी के समान।

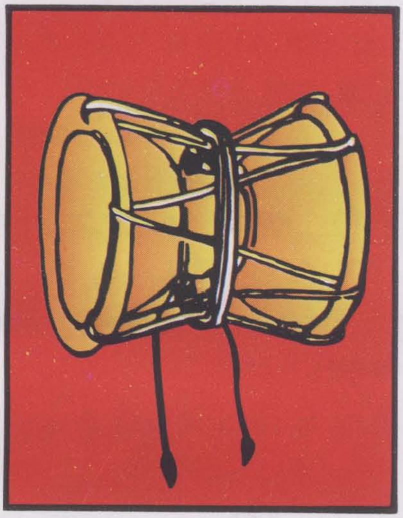

विवरण—शंकर का प्रतीक चिह्न डमरु अतीत में शास्त्रीय संगीत का प्रमुख वाद्य था लेकिन वर्तमान में इसे लोक और आदिवासी संगीत में ही उपयोग करते हैं। अनेक किस्मों वाला यह वाद्य डमरु १० सेमी. से दो हाथ तक लम्बा तथा बीच में एकदम पतला होता है। इसके मुख का व्यास लगभग एक मुट्ठी होता है, जो पतले चमड़े से ढ़का रहता है। ये चमड़े दोनों ओर से एक पतली रस्सी से कसे रहते हैं। इस रस्सी के मध्य में, जहां वाद्य पतला होता है, रस्सी के ऊपर एक कड़े के समान रस्सी कसी रहती है और उसके दोनों छोर लटकते रहते हैं। इन्हीं दोनों सिरों पर एक-एक घुण्डी बनी होती है। इसे सीधे हाथ से मध्य स्थान पर पकड़ कर हाथ घुमाया जाता है जिससे घुण्डियां मुखों पर प्रहार कर शब्द उत्पन्न करती हैं। वर्तमान समय में जोगी लोग डमरु के दोनों ओर की घुण्डियों को बांएं हाथ से पकड़ कर दाहिने हाथ से बेंत के एक टेढ़े टुकड़े से बजाते हैं। वर्तमान शिव मन्दिरों में इस सामान्य आकार से लगभग तिगुना अथवा चौगुना बड़ा डमरु होता है। इस बड़े आकार के डमरु का रूप प्रायः वर्तमान हुडुक जैसा ही होता है किन्तु वादन-भेद के कारण इसे डमरु ही कहा जाता है।

दक्षिण भारत में डमरु को बुदबुदके के अथवा कुडुकुडुप्पे के नाम से जानते हैं। तिब्बत और निकटवर्ती क्षेत्रों का डमरु अपनी रचना और वादन के अवसरों के कारण बहुत दिलचस्पी का कारण बनता है, जिसे स्थानीय भाषा में नगाचंग कहते है। उत्तर भारत में डमरु का विशेष प्रयोग बन्दर, भालू आदि का नाच दिखाने के लिए किया जाता है।

डिंडिम (डिण्डिम) राज. ७७, जीवा. ३/५८८

डिण्डिमा, तबुल

आकार—पणव वाद्य से कुछ छोटा।

विवरण—इस वाद्य की लम्बाई एक या सवा हाथ की होती है। दोनों मुखों का व्यास पौन हाथ होता है। ढांचा कठोर लकड़ी से बनाया जाता है। दोनों मुख चमड़े से मढ़े जाते हैं। दोनों मुखों के घेरे में चमड़े की डेढ़ अंगुल घनता की कुण्डली बांधी जाती है। बांयीं ओर का मुख कुण्डली के अंदर है। दाहिनी ओर की कुण्डली सीधी है। दाहिने मुख को हाथ से बजाते है और बांये मुख को एक बित्तालुम्बी लकड़ी से इस वाद्य को गले और दाहिने पार्श्व में टांग कर बजाते हैं। इसके शब्दों में डिङ्, डिङ् मुख्य है। इसी कारण से इनका नाम 'डिङ् डिङ्' पड़ा। इस वाद्य का प्रयोग दक्षिण भारत में ही विशेष रूप से होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढंकुण (ढंकुण) निसि. १७/१३९ आ.चू. ११/२

ढंकुण, गोपी यंत्र, गोपी जंत्र

आकार–तुनतुना सदृश।

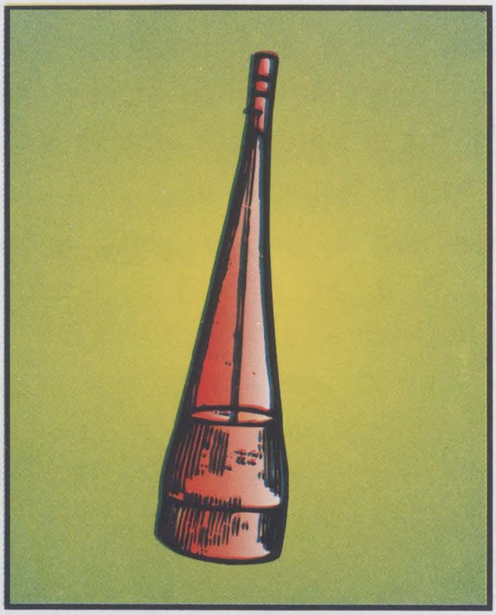

विवरण–मुख्य रूप से बंगाल, बिहार में पाए जाने वाले इस वाद्य में स्वर उत्पन्न करने के लिए निम्न भाग को काष्ठ और चमड़े से मढ़ा जाता है। खोलनुमा कटोरा नीचे से चौड़ा होता है जो क्रमशः ऊपर की ओर संकरा होता चला जाता है। इसमें लगभग तीन फुट लंबे तथा पतले बांस को नीचे की ओर से लगभग ढाई फुट तक चीर देते हैं। ऊपर के लगभग छह इंच के जुड़े भाग को छोड़ कर शेष चिरे हुए भाग की खपच्चियों को छील कर इतना पतला कर देते हैं कि वह लगभग नौ इंच तक फैल सके। निचले बांस की इन खपच्चियों के छोरों को ऊपर से खुले हुए एक छोटे तुम्बे से जोड़ देते हैं। तुम्बे के निचले भाग में एक छिद्र कर देते हैं जहां से तार लगाते हैं। इसमें एक तार होता है जो ऊपर से नीचे तक जाता है।

यह वाद्य समानधर्मी तुनतुने से कहीं अधिक चपल और स्वर बदलने की क्षमता रखता है। क्योंकि यह तुनतुने की अपेक्षा कहीं अधिक सुरीले और गहरे स्वर निकाल सकता है। इस वाद्य को प्रान्तीय भाषा में ढंकुण, गोपी यंत्र, गोपी जंत्र आदि कहते हैं।

णंदिस्सरा (नंदीस्वरा) जीवा. ३/५९८, जम्बू. २/१६

नंदीस्वर

(विवरण के लिए द्रष्टव्य–नंदीघोषा)

तंती (तन्त्री) दसा. १०/१८,२४, पज्जो. ५४,७५, ठाणं ८/१०, औप. ६८, राज. ७७

जंत्रीवीणा, त्रितंत्रीवीणा, यंत्रवीणा, तंत्रीवीणा, सितार, तम्बूरा।

आकार–सितार के समान जो तुम्बे से बनाई जाती थी।

विवरण–इस वीणा में तीन तार लगे होते थे किन्तु इसमें पांच तारों का प्रयोग होने लगा। जैसा कि 'आइने अकबरी' में संगीत वाद्यों का वर्णन करते हुए यंत्र वीणा का उल्लेख प्राप्त होता है।

इस वाद्य का दण्ड प्रायः एक गज लम्बा होता है, ऊपर और नीचे दो कटे हुए तुम्बे लगाये जाते हैं। इस के दण्ड पर सोलह पर्दे लगे रहते हैं। इसमें पांच तार लगाये जाते हैं। स्वरों को ऊंचा-नीचा करने के लिए पर्दों को सरकाया जा सकता है। वास्तव में यह त्रितंत्रीवीणा प्राचीन यंत्र वीणा का ही नाम है।

कल्लिनाथ ने संगीत रत्नाकर की टीका. पृ. २४८ में ''तत्र त्रितन्त्रिकं लोके जन्त्रशब्देनोच्यते'' कहकर त्रितंत्री को ही यंत्र वीणा कहा है।

कवि सूरदास ने भी यंत्र बजाने वाले को यन्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहकर संबोधित किया है।

फलन मॉझ ज्यों करुई तो मरी रहत धुरे पर डारी।
अब तो हाथ परी यन्त्री के बाजत राग दुलारी।।

आइने अकबरी, संगीत पारिजात आदि में जो त्रितंत्रीवीणा का वर्णन मिलता है, उससे सिद्ध होता है कि सितार और तम्बूरा त्रितंत्री के ही दो विकसित रूप हैं। सौरेन्द्र मोहन ठाकुर ने 'यंत्र क्षैत्र दीपिका' सन् १८८२ के आस-पास लिखी।

ठाकुर ने सितार को त्रितंत्री वीणा ही माना है। श्री ठाकुर अभिमत है–त्रितंत्री वीणा को अमीर खुसरो ने सेहतार कहना शुरू किया जो आगे चलकर सितार के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–संगीत सार, भारतीय संगीत वाद्य)

तल (तल) राज. ७७, ठाणं ८/१०, दसा. १०/१८,२४, औप.६८

तल, ताली, जाल्रा

आकार–झांझ और ताल से छोटा।

विवरण–इस वाद्य का निर्माण कांसे या पीतल से होता है। लगभग ५ सेन्टीमीटर व्यास वाले इस वाद्य के बीच का उभार नहीं के बराबर होता है। इसको एक-दूसरे के आघात द्वारा बजाया जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–ताल)

ताल (ताल) निसि. १७/१३८, पज्जो. ९,५४, ठाणं ८/१०, दसा. १०/१८,२४

ताल, तार (ब्रजभाषा) टाइ (महाराष्ट्र)

आकार–सामान्यतः झांझ, मंजीरा से बड़ा।

विवरण–ताल-वाद्य अग्नि में शुद्ध किये हुये कांसे से बनाया जाता है, जो दो हिस्सों में होता है। ये दोनों भाग लगभग छह अंगुल व्यास के गोल कांसे के बने हुए बीच से दो अंगुल गहरे होते हैं। मध्य में छेद होता है। इन छेदों में डोरी डालकर भीतर से गांठ लगा दी जाती है जिससे डोरी निकलने न पाये।

इन्हें इस प्रकार बनाया जाता है जिससे इनकी ध्वनि श्रुति मधुर हो। इनमें से जिस ताल की ध्वनि अपेक्षाकृत कुछ ऊंची हो, बांएं हाथ के अंगूठे के भीतर होती हुई उसकी डोरी को तर्जनी में लपेट कर गदेली से पकड़ा जाता है तथा दूसरे ताल की डोरी को दाहिने हाथ की तर्जनी में लपेट कर अंगूठे के अग्र भाग से पकड़ कर बजाया जाता है। बांएं हाथ की शेष अंगुलियां उस हाथ के ताल की ध्वनि को नियंत्रित तथा मुक्त करने का काम करती हैं। इन दोनों तालों में से अल्प नाद वाली ताल अर्थात् बांएं हाथ की ताल शक्तिरूप तथा दाहिने हाथ की ताल शिवरूप समझी जाती है। कृष्ण-भक्त कवियों ने अन्य वाद्यों के साथ ताल वाद्य का बहुलता से वर्णन किया है। ब्रज में इस ताल को 'तार' भी कहते हैं। महाराष्ट्र में इसी से मिलता-जुलता वाद्य 'टाड़' कहा जाता है, जो अन्य लोक वाद्यों के साथ बजाया जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–संगीत दामोदर, वाद्य प्रकाश)

तुंबवीणा (तुम्बवीणा) निसि. १७/१३७, राज. ७७, आचू. ११/२

तम्बूरा, तानपूरा

आकार–आधुनिक सितार के सदृश चार तारों वाली वीणा।

विवरण–गायकों के लिए तम्बूरा एक महत्त्वपूर्ण तार-वाद्य है। इसे लौकी या कद्दू के तुम्बे से बनाया जाता है। इसमें किसी गाने की सरगम नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निकलती, केवल स्वर देने के लिए ही इसका प्रयोग किया जाता है। गायक अपने गले के धर्मानुसार इसमें अपना स्वर कायम कर लेते हैं और फिर इसकी झंकार के सहारे उनका गायन चलता रहता है। इसमें दो तुम्बे लगे होते हैं। नीचे का तुम्बा गोल और ऊपर का कुछ चपटा होता है। इसके अन्दर पोल होती है जिसके कारण स्वर गूंजते हैं। तम्बूरे में चार तार होते हैं, जिनमें तीन तार स्टील के तथा चौथा तार पीतल का होता है। उत्तर भारतीय तम्बूरे और कर्णाटकीय तम्बूरे की बनावट में कुछ अन्तर होता है वह इस प्रकार है–

१. उत्तर भारतीय तम्बूरे में तबली के नीचे लौकी का तुम्बा लगाया जाता है जबकि कर्नाटकीय तम्बूरे में उस स्थान पर लकड़ी का ही प्रयोग होता है।

२. कर्नाटकीय तम्बूरे की तबली सपाट होती है। वह उत्तर भारतीय तम्बूरे की भांति बीच से उठी नहीं रहती।

३. कर्नाटकीय तम्बूरे की घुड़च में हड्डी के स्थान पर ताम्र-पत्रिका का प्रयोग होता है।

४. उसका दण्ड उत्तर भारतीय तम्बूरे से कम होता है।

विभिन्न गायकों के बैठने के अलग-अलग ढंग होते हैं। कुछ एक घुटना नीचा और एक घुटना ऊंचा करके बैठकर तानपूरे का वादन करते हैं। कुछ तानपूरे को जमीन पर लिटाकर वादन करते है।

विमर्श–डॉ. लालमणि मिश्र के (भारतीय संगीत वाद्य पृ. ४२) अनुसार तम्बूरे का सर्वप्रथम उल्लेख संगीत पारिजात में प्राप्त होता है, अतः वर्तमान में प्राप्त तम्बूरे का रूप १३वीं शताब्दी के बाद का है। डॉ. मिश्र अगर वैदिक ग्रन्थों के साथ-साथ जैनागमों का अध्ययन करते तो उनकी धारणा स्पष्ट हो जाती कि तुम्बवीणा का वर्णन अति प्राचीन है। जैनागमों में अनेक स्थलों पर इस शब्द का उल्लेख मिलता है।

आचार्य मलयगिरि (विक्रम की १२वीं शताब्दी) ने राज. टी. पृ. ४९-५० और जीवा. टी. पृ. २८१ में "तुम्बा युक्ता वीणा येषां ते तुम्बवीणाः" कह कर तुम्बवीणा वाद्य की पुष्टि की है। अतः तुम्बवीणा प्राचीन वाद्य है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–भारतीय संगीत वाद्य)

तुडिय (तूर्य) पज्जो. ९, ५४, ठाणं ८/१०, दसा. १०/१८,२४, औप. ६८

तुरुतुरी, तित्तरी, तुण्डकिनी, तुरही, तूर्य, तातुरी, कोम्बु (दक्षिण भारत) कहल (उड़ीसा) तुतरी (मराठी)

आकार–चंद्राकार, सर्पाकार, अंग्रेजी के सी अक्षर के आकार आदि का २ से ४ हाथ लम्बा सुषिर वाद्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवरण—काहला के समान यह वाद्य भी तांबा, चांदी और सोने से निर्मित होता था। वर्तमान में ग्रामवासी, आदिवासी तांबे या पीतल की तुरही का प्रयोग करते हैं। प्राचीन काल में प्रायः एक साथ दो तुण्डकिनी का वादन होता था, वर्तमान में प्रायः एक का वादन होता है। वर्तमान काल में तुरही के अनेक रूप देखने में आते हैं। इनमें कोई छिद्र नहीं होता, केवल हवा फूंककर उसके विभिन्न दबावों से ऊंचे-नीचे स्वरों की उत्पत्ति की जाती है। दक्षिण में सीधी तुरही को कोम्बु और पीतल की घुमावदार तुरही को तातुरी कहते हैं। संस्कृत में सर्पाकार तुरही को वक्री कहते हैं।

जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, मांगलिक अवसर और धार्मिक शोभायात्राओं में इसका वादन किया जाता है।

तूण (तूण) निसि. १७/१३७, राज. ७७

तुण, तुनतुना, तुण-तुण, तुण-तुणे।

आकार—डिब्बे पर बंधे हुए बांस के समान।

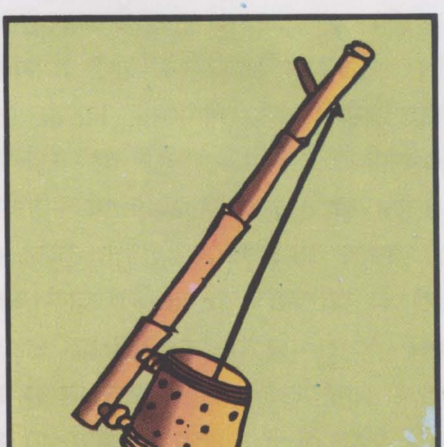

विवरण—यह वाद्य प्रायः दक्षिण-मध्य भारत और पश्चिम भारत में प्रचलित है। वहां के भिक्षुक इसे अपने साथ लेकर चलते हैं। यह आकार में छोटा होता है। लगभग २५ सेंटीमीटर ऊंचा और १५-२० सेंटीमीटर चौड़ा लकड़ी का पोला, वर्तुलाकार खोल, जिसकी नीचे की तह चमड़े से मढ़ी हुई होती है। बाहर की तरफ लगभग ७५ सेंटीमीटर लम्बे बांस के टुकड़े को इसमें कस दिया जाता है। इस बांस के ऊपर एक खूंटी गाढ़ कर तार कस दिया जाता है। यही तार नीचे मढ़े हुए हिस्से तक जाता है। गायक इस तुनतुने को अपने हाथ में पकड़े रहता है तथा अंगुली से तार को छेड़ कर विभिन्न स्वर निकालता रहता है। महाराष्ट्र के लोकगीतों-खासकर तमाशा और पौवाड़ा में तुनतुने की संगीतात्मक क्षमता का सही रूप देखने को मिलता है। तार को मनचाहे स्वर में मिला लिया जाता है तथा इसके दण्ड की दाहिने हाथ की मूठ में पकड़ कर दाहिने हाथ की ही तर्जनी अंगुली से वादन किया जाता है। वादन की प्रक्रिया सामान्य एकतारा जैसी ही है। इसे महाराष्ट्र में तुण-तुणे कहते हैं।

तूणक (तूणक) प्रश्न व्या. १०/१४

तुइला, तूणक

आकार—सामान्य आकृति वाली एक तंत्री वीणा।

विवरण—यह वाद्य भी बहुत तेजी से लुप्त होता जा रहा है। और इसके वादक भी बहुत कम हैं। इसका दंड लम्बाई में लगभग ९ अंगुल तथा २० सेमी. गोलाई का होता है। इस वाद्य में बांस की नली पर एक तांत कसी रहती है। इसमें न मेरू होता है, न मुंडेर। दूसरी ओर कोई खूंटी भी नहीं होती। तुइला की ऊपरी ओर दंड के नीचे आधी कटी लौकी लगी होती है, यह वाद्य वादक के शरीर के समलंब स्थिति में रहता है तथा लौकी की तुंबी वादक के वक्ष के पास रहती है। एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथ से तांत को खींचा जाता है। तुइला की विशेषता यह है कि तांत पर वादक की केवल तीन अंगुलियां संचालित होती हैं और ऊपर या नीचे किये बिना सातों सुर निकालने में समर्थ होती हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—वाद्य यंत्र)

दद्दरग (दद्दरग, दर्दरक) राज. ७७, जीवा. ३/५८७

दर्दुर, दर्दर, दर्दरक

आकार—घट के आकार का एक अनवद्ध वाद्य जिसका मुख चमड़े से मढ़ा होता था।

विवरण—यह एक प्राचीन वाद्य था। महर्षि भरत के समय में ईसा से २०० वर्ष पूर्व यह एक महत्त्वपूर्ण ताल वाद्य था। क्योंकि इसकी गणना मृदंग और पणव के साथ की गई है। महर्षि भरत के अनुसार इसका मुख नौ अंगुल का होता था, जिसके ऊपर चमड़े की पूड़ी का विस्तार बारह अंगुल का होता था। यह चमड़े की पूड़ी सुतलियों से पणव के समान ही कसी रहती थी। शब्दों को वाद्य पर निकालने के लिए दोनों हाथों का प्रयोग किया जाता था। दाहिने हाथ का प्रयोग मुक्त, अर्धमुक्त तथा बन्द ध्वनियों के वादन के लिए होता था। बांएं हाथ का प्रयोग दाहिने हाथ के सहायक के रूप में होता था। वर्तमान में इस नाम का कोई वाद्य प्राप्य नहीं है किन्तु इस प्रकार के अनेक लोक-वाद्य आज भी प्रयोग में हैं, जिन्हें अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है।

दद्दरिगा (दद्दरिगा, दर्दरिका) राज. ७७

दर्दरिका, लघु दर्दरक

आकार—दद्दरग से छोटा।

विवरण—यह वाद्य दर्दरक से छोटा होता है। इसकी अनेक किस्में भारतीय लोक-संगीत में आज भी अगल-अलग नामों से प्राप्त होती हैं। राज. टी. पृ. ४९-५० में ''दर्दरिका लघु दर्दरक'' कहकर लघु दर्दरक होने का संकेत किया है।

इस वाद्य को गोह नामक छिपकली की खाल से बनाया जाता है। विभिन्न स्वरों को निकालने के लिए वादक चमड़े को ढीला करता है और कसता रहता है।

अनुद्वार हा टी पृ. ६६ में भी ''गोधा-चम्मावणद्धा गोहिता सा य दद्दरिगा'' इसको गोह के चर्म से निष्पन्न अवनद्ध वाद्य माना है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—दद्दरग)

दुंदुभि, दुंदुहि (दुंदुभि) उत्त. १२/३६, अनु. ५६९, पज्जो. ७५, दसा. १०/१७. राज. ७७, औप. ६७

दुंदुभि

आकार—नगाड़ा के सदृश।

विवरण—दुंदुभि बहुत कुछ आज के नगाड़े से मिलता था और शंकु आकार के वाद्यों में सबसे प्राचीन था। इसका वर्णन जैनागमों, पिटकों, वेदों एवं कथा-साहित्य में मिलता है। यह कहा जा सकता है कि दुंदुभि एक लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित वाद्य था। अनेक आधुनिक संगीतकार दुंदुभि को नगाड़ा का ही पर्यायवाची मानते हैं। उनके कथन के अनुसार—''दुं-दुं भति इति दुंदुभिः'' इस आवाज से दुंदुभि का नाम दिया गया। प्राचीनकाल में इस वाद्य के दो प्रकार थे—१. दुंदुभि २. भूमि दुंदुभि।

भूमि दुंदुभि गड्ढा खोदकर तथा उसको चमड़े से मढ़कर बनाई जाती थी। प्राचीन दुंदुभि एक ही नग का बड़ा नगाड़ा जैसा होता था। वर्तमान में प्राप्त दुंदुभि प्राचीन दुंदुभि से भिन्न है, जिसका वर्णन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार है—

जिस प्रकार तबले में दो नग होते हैं—एक दांया और दूसरा बांयां दोनों को मिलाकर तबला कहा जाता है। उसी प्रकार दुंदुभि में भी दो नग होते हैं। एक बड़ा नगाड़ा जिसका शब्द गंभीर होता है तथा एक छोटा नगाड़ा जिसका शब्द छोटा तथा ऊंचा होता है। इस प्रकार यह दो स्वर वाला दो नग का वाद्य दुंदुभि कहलाता है। छोटा नगाड़ा मिट्टी का बना हुआ होता है। जिसे 'झील' अथवा 'अघोटी' कहते हैं। यह चमड़े का मढ़ा हुआ तथा चमड़े की ही डोरियों से कसा हुआ होता है। दूसरा नगाड़ा बड़ा होता है जो शंकु के आकार का धातु का बना होता है। इसके मुख का व्यास लगभग एक हाथ का होता है तथा स्थूल चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। यह नगाड़ा इच्छानुसार बड़ा बनाया जा सकता है। यह दो शंकु आकार की गोल लकड़ियों से बजाया जाता है जो प्रायः एक हाथ लम्बी होती हैं। उत्तर प्रदेश में प्रचलित नगाड़ा जो नौटंकी (स्वांग) के साथ बजाया जाता है, दुंदुभि से पूर्ण साम्य रखता है।

दुंदुभि आनन्दोत्सव, विवाहादि के समय तथा देव-मंदिरों में बजायी जाती है। आगमों में स्थान-स्थान पर प्रसन्नता के अवसर पर देवताओं द्वारा दुंदुभि वादन का वर्णन हुआ है। युद्ध के समय भी दुंदुभि का वादन होता था।

विमर्श—हिन्दी शब्द सागर में दुंदुभि का अर्थ नगाड़ा और घौंसा किया है। 'द म्यूजिक ऑफ इंडिया' में नगाड़ा और भेरी, भारतीय संगीत वाद्य पृ ७७ में दुंदुभि को नगाड़ा, दमामा आदि का ही एक प्रकार तथा संगीत शास्त्र दर्पण में दुंदुभि को नगाड़ा का ही पर्यायवाची माना है। जैन टीकाकारों ने भी इसके भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं। राज. टी. पृ. ४९-५० में इसे भेरी के आकार का तथा भगवती टी. पृ. ४७६ में 'ढक्का' माना है। इसलिए प्रस्तुत शब्द के विवरण में प्राचीन और नवीन दोनों के आधार पर दुंदुभि का वर्णन किया गया है।

नंदि (नंदी) निसि. १७/१३६

नंदी, उपंग, आनंद लहरी, खंगम (बंगाल) अपंग (राज.)

आकार—छोटी ढोलक का लगभग आधा भाग, जो दो हिस्सों में विभक्त तथा एक तार से जुड़ा रहता है।

विवरण—इस वाद्य का प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपों में आज भी समस्त भारत में होता है। इस वाद्य में दो ढांचें—एक बड़ा, दूसरा छोटा—एक ही तार से जुड़े रहते हैं। इसमें लगभग हुडुक की सी ध्वनि निकलती है, किन्तु हुडुक की रस्सियों को ढीला और कड़ा करने से स्वर की जो ऊंचाई-नीचाई प्राप्त होती है, उससे कहीं अधिक ऊंचाई-नीचाई इस वाद्य में होती है। आधुनिक युग में इसका प्रयोग उदयशंकर जैसे नृत्याचार्यों द्वारा तथा अनेक फिल्मों में होता दिखाई पड़ता है। इसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हास्यात्मक ध्वनि उत्पन्न होती है तथा स्वर की ऊंचाई-नीचाई इतनी अधिक प्राप्त की जा सकती है कि उसका अनेक रूपों में उपयोग किया जा सकता है। उपंग का जो रूप बंगाल में प्रचलित है, उसे खंगम या आनंद लहरी कहते हैं। राजस्थान में इसे अपंग कहते है। इस वाद्य का प्रयोग सपेरों और लोक गायकों—विरहा या आल्हा गायकों द्वारा किया जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय संगीत वाद्य)

नंदिघोसा (नंदिघोषा) राज. ७७, १७३, जीवा. ३/५९८, जम्बू. ३/१७१

नंदिघोष

विवरण—नंदिघोष किसी एक वाद्य की ध्वनि का वाचक नहीं है, अपितु अनेक वाद्यों की ध्वनि का सूचक है। उत्त. टी. पृ. ३०५ में "द्वादश तूर्य-संघातो नन्दी तस्य घोषः"। कहकर द्वादश वाद्यों के घोष को नंदीघोष कहा गया है। ईसा से लगभग २०० वर्ष पूर्व महर्षि भरत ने कुतप विन्यास का वर्णन किया है, जिसका अर्थ होता है—वीणा आदि वादकों के लिए बैठने की व्यवस्था। प्राचीन संगीत ग्रंथों में पंच महाशब्द और पंच वाद्य का वर्णन मिलता है। पंच महाशब्द में तुरही, घड़ियाल, ढोल, हुडक्का और शहनाई—के संयुक्त वादन के शब्द होते थे। कर्नाटक, केरल और उड़ीसा में आज भी पंच वाद्य का प्रचलन है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—वाद्य यंत्र)

नंदीमुइंग (नंदी मृदंग) राज. ७७, जीवा. ३/७८

नंदी मृदंग

आकार—ढोलक के सदृश अवनद्ध-वाद्य, जिसका एक मुख संकीर्ण और दूसरा मुख विस्तृत होता है।

विवरण—यह वाद्य सामान्यतः मृदंग से आकार-प्रकार में बड़ा होता था, जिसे विशेष खुशी के अवसर पर बजाया जाता था।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—मृदंग)

नकुल (नकुल) राज. ७७

नकुल, नकुली, नकुला।

आकार—दो तंत्री युक्त नकुलाकृति वीणा।

विवरण—इस वीणा का उल्लेख प्रायः संगीत के सभी ग्रंथों में प्राप्त होता है। संभवतः इसका प्रचार ईसा की तीन-चार शताब्दी पूर्व से लेकर तेरहवीं शताब्दी पर्यन्त तक रहा। मत्तकोकिला वीणा जिस प्रकार हाथ की अंगुलियों से छेड़कर बजायी जाती थी, उसी प्रकार इसको भी बजाया जाता था। किन्तु इस वीणा के रूप का कोई स्पष्ट संकेत प्राप्त नहीं होता है।

डॉ. लालमणि मिश्र ने भारतीय संगीत वाद्य पृ. ४५ में इसे नकुल के आकार का माना है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—संगीत सार, संगीत पारिजात)

नाली (नाड़ी) जीवा. ३/७८

नाली, नादी।

आकार—बांसुरी के सदृश।

विवरण—यह एक पुराना वाद्य था। नाद उत्पन्न करने वाली वंश-नलिका होने के कारण प्रारंभ में इसका नाम नादी भी था। नादी नाम से अभिहित होने वाली बंशी में कितने रन्ध्र होते थे, इसका उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय संगीत वाद्य)

नाली (नाड़ी) जीवा. ३/७८

नड, नढ़, नाली।

आकार—मशक की तरह फूंक से बजाया जाने वाला वाद्य।

विवरण—इस वाद्य का निर्माण कगोरे के पेड़ की प्राकृतिक लकड़ी से होता है, जो बांस के समान ही होती है। जिस प्रकार शीशी फूंक कर बजायी जाती है, उसी प्रकार इसे भी किनारे से फूंक कर बजाया जाता है। फूंकने वाले स्थान से इसके छिद्र बहुत दूर होते हैं। मुंह की फूंक द्वारा मशक में पूरी हवा भर ली जाती है, फिर बासुरी की तरह उसमें लगी हुई नली पर अंगुली के संचालन से स्वर पैदा किये जाते हैं। इस वाद्य में तीन या चार छिद्र होते हैं। कुछ परिवर्तन के साथ इस वाद्य का प्रचार सिन्ध प्रदेश तक पाया जाता है। यह जैसलमेर की चरवाहा जाति और राजस्थान के भौपों के द्वारा बजाया जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—राजस्थान का लोक संगीत)

पडह (पटह) औप. ६७, निसि. १७/१३६, पज्जो. ७५, दसा. १०/१७, राज. ७७

पटह, ढोलक

आकार—भेरी के सदृश एक अवनद्ध वाद्य।

विवरण—शास्त्रीय और लोक संगीत—दोनों में महत्त्वपूर्ण वाद्य के रूप में प्रयुक्त होने वाला पटह वाद्य आज भी ढोलक के नाम से प्रख्यात है। संगीत ग्रंथों में इसका विस्तार से विवरण प्राप्त है। पटह दो प्रकार का होता है—देशी तथा मार्गी।

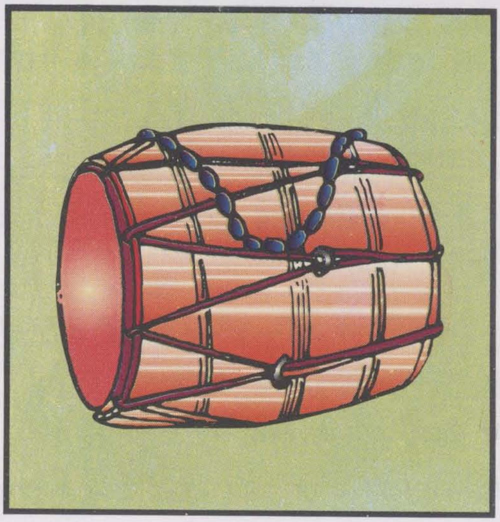

मार्गी पटह

इसकी लम्बाई डेढ़ हाथ से ढाई हाथ तक की होती है तथा बीच का भाग कुछ उठा हुआ होता है। इसके दाहिने मुख का व्यास साढ़े ग्यारह अंगुल तथा वाम मुख साढ़े दस अंगुल का होता है। काठ भीतर से खोखला होता है तथा उसके दोनों मुख गोल होते हैं। दाहिने तथा बांएं मुख पर लोहे अथवा काठ की हंसुली पहना कर उन्हें चमड़े से लपेट दिया जाता है।दाहिने मुख पर पतला चमड़ा तथा वाम मुख पर मोटा चमड़ा मढ़ा जाता है। इन हंसुलियों में सात-सात छेद कर रेशम की डोरी पिरो दी जाती है, जिसमें सोना, पीतल अथवा लोहे के छल्ले डाल दिये जाते हैं, जिन्हें आवश्यकतानुसार खींच कर स्वर मिला लिया जाता है।

देशी पटह

इसकी लम्बाई डेढ़ हाथ की होती है तथा इसका दक्षिण और वाम मुख क्रमशः सात तथा साढ़े छह अंगुल व्यास के होते हैं। शेष बातें मार्गी पटह की भांति ही होती हैं। पटह के लिए खैर की लकड़ी सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। देशी पटह के आकार में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य अंतर भी हो सकता है। प्रायः सभी मांगलिक अवसरों पर इसका वादन किया जाता है।

विमर्श—संगीत पारिजात में "पटह ढोलक इति भाषायाम्" कहकर ढोलक अर्थ किया है। संगीत सार में भी प्राचीन पटह को मध्यकालीन ढोलक का पर्याय माना है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—संगीत रत्नाकर)

पणव (पणव) निसि. १७/१३७

पणव वीणा, पल्लव वीणा

आकार—गज से बजाए जाने वाली वीणा सदृश।

विवरण—यह एक अति प्राचीन तत वाद्य था, जिसकी विभिन्न किस्में आज भी पूरे भारत में प्राप्त होती हैं। इस वाद्य में स्वर पेटी प्रायः नारियल के खोल की अथवा लकड़ी की बनाई जाती हैं जो वादक के कंधे के पास रहती है और दंड नीचे भुजा की ओर बढ़ा होता है। गज हथेली से नीचे की ओर पकड़ा जाता है तथा तार अंगुली के पोरों से पकड़े जाते हैं।

केरल में इस वाद्य को पल्लव, बिहार, बंगाल के आदिवासी क्षेत्रों में पणव, मणिपुर में पेना आदि कहते हैं।

पणव (पणव) निसि. १७/१३७, दसा. १०/१७, पज्जो. ६४,७५, राज. ७७, औप. ६७, प्रश्न व्या. १०/१४

पणव, बड़े आकार का हुडुक।

आकार—आधुनिक हुडुक के सदृश, किन्तु आकार-प्रकार में बड़ा।

विवरण—पणव एक अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य था। इसका उल्लेख जैनागमों, वेदों, पिटकों और संगीत ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर हुआ है। महर्षि भरत ने मृदंग के बाद पणव को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया। महर्षि भरत के अनुसार पणव का आकार इस प्रकार है—

सोलह अंगुल लम्बा, मध्य भाग भीतर की ओर दबा, जिसका विस्तार आठ अंगुल तथा जिसके दोनों मुख पांच अंगुल के हों, वह पणव है। आधे अंगूठा के समान मोटा उसका काठ होता है और भीतर का खोखला भाग चार अंगुल के व्यास का होता है। पणव के दोनों मुख कोमल चमड़े से मढ़े जाते थे, जिन्हें सुतली से कस दिया जाता था। सुतलियों का यह कसाव कुछ ढीला रखा जाता था जिसे वादन के समय बायें हाथ से मध्य भाग को दबाकर तथा ढीला कर आवश्यकतानुसार ऊंची-नीची ध्वनि निकाली जाती थी।

युग परिवर्तन के साथ-साथ वाद्यों की महत्ता में भी परिवर्तन आया, जिसके परिणाम स्वरूप पणव वाद्य आज कहार, अहीर और भांड जाति का ही वाद्य बनकर रह गया। दक्षिण भारत में अब भी कहीं-कहीं मंदिरों में इसका प्रयोग देखने को मिलता है, किन्तु उत्तर भारतीय शिव मंदिरों में इसे बड़े आकार का डमरू माना जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भरतनाट्य शास्त्र)

परिपरि (परिपरि) निसि. १७/१३९

परिपरि

आकार—शंखाकृति।

विवरण—प्राचीन परिपरि बांसुरी वाद्य अनेक बांस नलिकाओं से बनाई जाती थी, जो वादन के समय परिपरिया ध्वनि उत्पन्न करती थी। वर्तमान में इस प्रकार की शंखाकृति बांसुरी प्रायः लुप्त सी है। किन्तु वर्तमान में शंखनुमा बंसी बनाने के लिए शंख के बंद सिरे को काट दिया जाता है, जिससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीतर के घुमावदार भाग दिखने लगे, कभी-कभी बन्द सिरें के पार्श्व में एक होद भी कर दिया जाता है, फिर छेद या काटे भाग में बांस या पीतल की नली लगा देते हैं, जिसके द्वारा फूंक मारकर वादन करते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—वाद्य यंत्र)

परिली (परिली) राज. ७७

परिली, फिफली, फिरिली, फिलिली।

आकार—बांसुरी सदृश।

विवरण—यह वाद्य लगभग १५ सेंटी. लम्बे बांस से निर्मित होता है जिसका एक सिरा खुला और दूसरा बंद होता है। खुला सिरा निचले अधर पर धरा जाता है और इसको खड़ा पकड़ा जाता है तथा इस द्वार से फूंक मारी जाती है। स्पष्ट है कि इस यंत्र से बहुत ही सरल धुनें बजायी जा सकती हैं। इससे थोड़ी जटिल फिफली में नल या बांस की अलग-अलग नाप की कई नलियों को आपस में बांधा जाता है और वह काफी कुछ एक छोटे बेड़े जैसी लगने लगती है। भिन्न-भिन्न लम्बाई की नलियां होने के कारण उनके स्वर भी अलग-अलग विस्तार के होते हैं। छोटी बांसुरी की ध्वनि अधिक तीखी होती है। हमारे देश में पायी जाने वाली फिफली यूरोप की पेनपाइप होती है।

आसाम के ल्होटा नागाओं में लगभग एक मीटर लम्बी बांस की पतली बांसुरी पायी जाती है, जिसे फिलिली, परिली के नाम से जाना जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—दहिस्ट्री ऑफ म्युजिकल इंस्ट्रमेंट्स)

परिवायणी (परिवादिनी) राज. ७७, जीवा. ३/५८८, प्रश्नव्या. १०/१४

परिवादिनी, सप्ततंत्री वीणा

विवरण—परिवादिनी वीणा का उल्लेख सर्वप्रथम प्राचीनता की दृष्टि से जैनागमों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। उसके बाद कालिदास एवं संगीत मकरन्द में इस वीणा का नामोल्लेख हुआ है। वाद्यप्रकाश ३० में "सप्तभिः तंत्रिभि (वीणा) दृश्यते परिवादिनी" कहकर परिवादिनी के सप्ततंत्री वीणा होने का संकेत किया है। राज. टी. पृ. ४९-५० में भी परिवादिनी को सप्ततंत्री वीणा कहकर उपरोक्त बात की पुष्टि की गई है। किन्तु किसी भी ग्रंथ में इसके आकार-प्रकार का वर्णन नहीं किया गया।

विमर्श—संगीत ग्रंथों में सात तार वाली वीणाओं के अनेक नाम प्राप्त होते हैं, जैसे-चित्रा, सप्ततंत्री, परिवादिनी आदि। इनके विषय में विस्तृत जानकारी के अभाव में वर्णन करना संभव नहीं है लेकिन भिन्न-भिन्न नामों के आधार पर इनके आकार-प्रकार की भिन्नता स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।

पव्वग, पच्चग (पर्वक, प्रत्यक) जम्बू. ३/३१

पर्वक, मुखवीणा, छोटा नागसर।

आकार—वेणु सदृश।

विवरण—मुखवीणा एक प्राचीन सुषिर वाद्य है। दक्षिण भारतीय साहित्य में इसका उल्लेख १२वीं शताब्दी के ग्रंथों से प्रारंभ होता है।

एक बालिश्त का नरसल लेकर उसे भूर्जपत्र में लपेट दिये जाने पर वह मुख वीणा कहलाता था। इसमें मुख की वायु से ध्वनि उत्पन्न होती है। इसको छोटा नागसर और पर्वक भी कहते हैं। इसका प्रयोग नाटकों में होता था।

मुंह से बजाए जाने वाला वाद्य होने के कारण इसे मुख वीणा कहा जाता है। आवश्यक चू. पृ. ३०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में भी इसे मुंह से बजाया जाने वाला वाद्य कहा है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–इंडियन फोक म्यूजिक इंस्ट्रूमेंट्स)

पव्वीसग (पव्वीसग) प्रश्न. ४/४

प्रविसक, पिनाकी वीणा, पिनाक, सुरवितान, पेना, पेन्ना वीणा

आकार–धनुषाकार।

विवरण–यह एक अति प्राचीन वाद्य है, जिसका उल्लेख प्रायः सभी संगीत ग्रंथों में प्राप्त होता हैं। इस वाद्य का दंड ४१ अंगुल का होता है। सिरे पर एक अंगुल चौड़ा तथा मध्य में दो अंगुल चौड़ा रहता है। इसके दोनों सिरों पर पौने दो अंगुल छोड़कर एक-एक अंगुल लम्बे तथा पौने दो अंगुल चौड़े मोहरे लगे रहते हैं। इन मोहरों के ऊपर मध्य में एक तांत बंधी रहती है। दंड के निचले भाग में तीन तुम्बे इस प्रकार लगे रहते हैं कि वादक के बैठने की स्थिति में निचला तुम्बा दोनों पैरों के बीच में, बीच का तुम्बा बगल में तथा अन्तिम तुम्बा कंधे पर आ जाता है। इस प्रकार वीणावादक की ऐसी स्थिति बन जाती है जैसे कोई धनुर्धारी धनुष लेकर बैठा हो। यह वीणा कमान से बजायी जाती है, जिसकी लम्बाई २१ अंगुल होती है। इसमें परदे नहीं होते। तांत तथा कमान में विरोजा लगाया जाता है।

विमर्श–संगीत ग्रंथों में 'पव्वीसग' नामक वाद्य का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। पव्वीसग देशी भाषा का शब्द है, जिसकी संस्कृत छाया–प्रविसक हो सकती है। प्रविसक पीनाकी वीणा को कहते है इसलिए प्रस्तुत शब्द के अन्तर्गत इसका ग्रहण किया गया है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–भारतीय संगीत वाद्य, इंडियन म्यूजिक इंस्ट्रूमेंट्स)

पिरिपिरिया (पिरिपिरिया) राज. ७१, भग. ५/६४, आ. चू. ११/४

मुरली, मारगी मुरली, पिरिपिरि

आकार–बांसुरी सदृश।

विवरण–यह वाद्य बांसुरी का ही एक भेद है। इसका बांस दो हाथ से कुछ बड़ा होता है। बजाने के लिए एक मुख-रन्ध्र होता है तथा स्वरोत्पत्ति के लिए चार छिद्र होते हैं। इसका नाद अत्यन्त मनोहारी होता है। कुछ परवर्ती आचार्यों ने इसे 'मारगी मुरली' के नाम से भी संबोधित किया है। असम के आदिवासी क्षेत्रों में इसे पिरिपिरि कहते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–संगीत सार)

पिरिली, पिरली (पिरिली, पिरली) जीवा. ३/५८८, जम्बू. ३/३१, जीवा. २६६, ज.पृ. १०१

पिरली, पुंगी, जिजीवी, तुम्बी, बीन, नागसर, मडवरि, महुदि, पीपिहरी

आकार–लम्बी नली के मध्य लगी हुई तुम्बी के सदृश।

विवरण–देश में सर्वत्र ही सपेरे लोग इस वाद्य का प्रयोग करते हैं। गंगाजली के आकार का एक तुम्बा लेकर उसके पेंदे में इतना बड़ा छेद करते हैं कि उसमें से दो बांसुरी के आकार के बांस जा सकें। इन बांसुरियों में ऊपर की ओर नरसल के दो रीड लगे रहते हैं, जैसे कि बच्चों की सीटियों में होते हैं। ये दोनों मोम से भली भांति चिपकाये हुए रहते हैं। नीचे के पेंदे को भी मोम से अच्छी प्रकार चिपका दिया जाता है, जिससे वायु बाहर न निकल सके। दोनों बांसों में बांसुरी के समान सात छिद्र आगे तथा एक छिद्र पीछे की ओर होता है।

इन नलिकाओं में से एक धुन बजाने के काम आती है, दूसरी केवल सुर निकालने के। इसे पुंगी, जिजीवी, तुम्बी या बीन भी कहते हैं। संस्कृत में इसका नाम नागसर है। लौकिक भाषा में इसे पिरली के नाम से भी जाना जाता है।

वर्तमान में बांस की नलिकाओं के स्थान पर दो या तीन सुत व्यास वाली पीतल की नली का भी प्रयोग करते हैं, जिसके कारण इस वाद्य को महुवरि भी कहते है।

पेया (पेया) राज. ७७

पेया, महती काहला

आकार–सामान्य काहला से बड़ा।

विवरण–इस वाद्य का आकार खरमुही (काहला) से काफी बड़ा होता था, जिसकी ध्वनि भी तीव्र एवं गंभीर होती थी। वर्तमान में यह वाद्य प्राप्त नहीं है।

विमर्श–संगीत के ग्रंथों में पेया नाम के किसी वाद्य का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। राज. टी. पृ. १२६ में **''पेया नाम महती काहला''** कहकर इसको महती काहला कहा है।

पोया (पोया) भग. ५/६४

महती काहला

भगवती टी. पृ. २१६ में इसे ''पोया नाम महती काहला'' कहकर महती काहला होने का संकेत किया है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–खरमुही, पेया)

बद्धक (बद्धक) राज. ७७, प्रश्नव्या. १०/१४

तारपा, घोंघा, खोंगाडा, डोबरू, बद्धक, (महाराष्ट्र)

आकार–लगभग पुंगी सदृश।

विवरण–इस वाद्य की संरचना का सिद्धांत पुंगी सदृश है। लौकी के दो या तीन लम्बे तुम्बों को एक साथ जोड़कर यह वाद्य बनाया जाता है। लम्बे तुंबे को मराठी में 'दूधिया भोपला' कहते हैं। बांसुरी सदृश इसमें स्वर रन्ध्रों की व्यवस्था होती है। पीछे की ओर एक छिद्र बनाकर उसमें एक नली (माउथ पीस) लगा देते हैं। जो मुखरन्ध्र का कार्य करता है। इसमें बजने वाली एक ही पत्ती होती है, जो कपाट का कार्य भी करती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इससे फूंकी गई हवा खोखली लौकी में भर जाती है, वह दाब बढ़ाती है और तब बांस की दो नलियों से प्रवाहित होती है। पुंगी की तरह इसमें भी थरथराने वाले पर्दे लगे होते हैं, जो दिखाई नहीं देते। इसमें बाहर भी छिद्र होते हैं जो संगीत बजाने के काम आते हैं। एक और अतिरिक्त भाग है जो महुदी में नहीं होता, यह ध्वनि को दिशा व विस्तार देने के लिए टीप होती है। यह टीप अथवा चोंगा ताड़ की पत्तियों का बना होता है, जिसकी पत्तियों को चीरकर आपस में गोल गोल सर्पीले आकार में बुन दिया जाता है। तारपो गुजरात के ग्रामीण अंचलों और महाराष्ट्र के वरली लोगों में प्रचलित एक खास प्रकार का फूंक वाला वाद्य है। इस वाद्य को दो-तीन लौकी के तुम्बे को जोड़कर बनाते हैं इसलिए कई क्षेत्रों में इसे बद्धक भी कहते हैं।

भाद्रपद (सितम्बर) माह के दूसरे पखवाड़े में जब धान की फसल काटने को तैयार होती है, वरली ग्रामीण एकत्रित होते हैं और तारपों का स्वर कई-कई रात तक काफी दूर से ही सुना जा सकता है। आश्विन (अक्टूबर) माह के आरंभ से हर रोज सूरज ढलते ही तारपो नृत्य किया जाता है। वादक गोला बनाकर बीच में खड़े हो जाते हैं और नर्तक उनके इर्द गिर्द गोल गोल घूमते हैं। तारपो-वादक मुड़ते हैं तो वे भी मुड़ जाते हैं। वे कभी भी तारपो-वादक की ओर पीठ नहीं करते हैं। विशेष अवसरों पर वरली भारी संख्या में महालक्ष्मी मंदिर पर इकट्ठे हो जाते हैं, जहां धार्मिक प्रवचन होता है और उत्सव के अंग के रूप में उनका परस्पर मुकाबला भी होता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य– वाद्य यंत्र)

बद्धीसग (बद्धीसग) राज. ७७, आ. चू. ११/२, प्रश्न व्या. १०/१४

बद्धीसक, बुआंग, धनुषाकार वाद्य।

आकार–धनुषाकार।

विवरण–यह एक प्राचीन तत वाद्य था, जिसकी अनेक किस्में आज भी अलग-अगल क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न नामों से प्राप्त होती हैं। उड़ीसा का बुआंग इसी वाद्य का एक प्रकार है, जिसकी लम्बाई लगभग एक मीटर होती है।

इसे बांस की नली, प्रतिध्वनि उत्पन्न करने वाले खोल तथा रस्से से बनाया जाता है। अंडे के आकार के बांस के खोल पर कागज चिपका कर इसे ध्वनि रोक यंत्र में बदल दिया जाता है। कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी कागज यहां तक कि अखबारी कागज और रंग बिरंगे पतले कागज की सुन्दर कतरनें जोड़कर इसे नयनाभिराम रूप दिया जाता है। इससे प्रतिध्वनि पैदा होती है और इसे एक आकर्षक रूप रंग भी सुलभ हो जाता है। इस बांस की टोकरी को बांस दंड के नीचे मध्य भाग में बांध दिया जाता है। बांस दंड के दोनों खुले मुखों पर पेड़ की मुड़ी हुई टहनियां कूंच दी जाती हैं। ये टहनियां कुछेक सेमी. लम्बी होती है। पटुवे की रस्सी से इसके दोनों सिरों को जोड़ दिया जाता है। इससे बूम-बूम जैसी ध्वनि निकलती है।

तमिलनाडु तथा केरल का बिल्लादी वाद्यम्,गुजरात तथा राजस्थान का रामणहत्था अथवा रामणस्त्र बद्धीसग वाद्य की ही प्राचीन किस्में हैं, जिनमें कुछ आधुनिकता का पुट दृष्टिगोचर होता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य–वाद्य यंत्र, भारतीय वाद्य गलु)

बल्लकी (बल्लकी) राज. ७७

बल्लकी, सामान्य वीणा, (एकतारा)

आकार–एक तार वाली सामान्य वीणा।

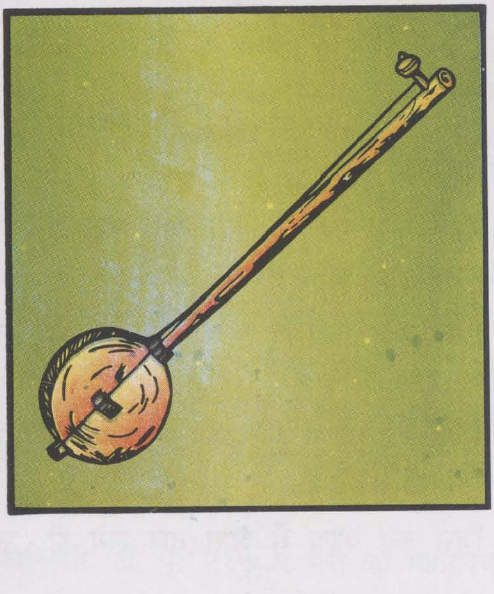

विवरण–इस वाद्य की गणना सामान्य वीणा के रूप में होती है, जो आकार-प्रकार में एकतंत्री वीणा से भिन्न है। यह वाद्य प्रायः घुमक्कड़ साधु, संतों एवं याचकों के हाथ में देखा जाता है, जिस पर वे स्वान्तः सुखाय भजन गाते हैं। इसकी बनावट निम्नोक्त प्रकार की है–

लगभग छह इंच परिधि का मोटा तथा तीन फुट लम्बा बांस का दंड बनाया जाता है, जिसके ऊपरी सिरे से दो इंच छोड़कर सामने की ओर एक खूंटी लगाई जाती है, जिसमें तार फंसा रहता है। नीचे लगभग २४ इंच व्यास का तुम्बा लगाया जाता है। यह तुम्बा सितार में शोभा के लिए लगने वाले ऊपर के तुम्बे से आकार में कुछ बड़ा होता है। इस तुम्बे के मध्य भाग में दोनों ओर से ऐसा छिद्र बनाते हैं, जिससे उपर्युक्त बांस का दंड तुम्बे के गर्भ में प्रवेश कर अन्तिम छोर से दूसरी ओर निकल आएं। तुम्बा में दंड का प्रवेश छिद्र इस नाप से बनाते हैं जिससे वह उसमें मजबूती से चिपक जाए और मजबूत बनाने के लिए दंड और तुम्बे में सरेस आदि चिपकाने वाला मसाला लगाकर उसकी अतिरिक्त जुड़ाई भी कर दी जाती है। तुम्बे का ऊपरी भाग लगभग २१ इंच की गोलाई से काट कर निकाल देते हैं तथा इस स्थान पर पतली की हुई खाल मढ़ देते हैं। प्रायः खाल को पानी में भिगोकर, उसे चारों ओर से खींच कर तुम्बी के ऊपर रखकर फूलदार कीलों से मढ़ देते हैं। इसी खाल के मध्य-क्षेत्र में छोटी सी घोड़ी रखी जाती है, जिसके ऊपर तार रखा जाता है। घोड़ी के पाये ऊपर के तार के दबाव के कारण खाल से चिपके रहते हैं। एकतारा में फौलाद का २ या ३ नम्बर का तार चढ़ाया जाता है जो एक छोर पर खूंटी से बंधा होता है तथा दूसरे छोर पर दंड के उस भाग से बंधा होता है जो तुम्बा के गर्भ से होता हुआ लगभग डेढ़ इंच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहर निकला रहता है।

जिस पर एक तार होता है, उसे एकतारा, जिस पर दो तार होते हैं उसे दो तारा कहते हैं।

विमर्श—प्रस्तुत शब्द का उल्लेख केवल जैनागमों में प्राप्त होता हैं। राज. टी. पृ. ४९-५० में **"बल्लकी-सामान्यतो वीणा"** कहकर इसे सामान्य वीणा माना है, इसीलिए सामान्य वीणा का वर्णन किया गया है।

भंभा (भम्भा) राज. ७७, जीवा. ३/३१, जम्बू. ३/३१, ज्ञाता. १७/२२

भम्भा, ढक्का, ढंका

आकार—ढवस के सदृश।

विवरण—यह वाद्य विजयसार के काठ से बनता है। इसकी लम्बाई एक हाथ तथा परिधि ३९ अंगुल की होती है। इसके दोनों मुख तेरह-तेरह अंगुल के होते हैं। दोनों मुखों को कड़े चमड़े से लपेटा जाता है तथा उसमें सात-सात छेद कर चमड़े से मढ़ दिया जाता है। उन छेदों में मोटा डोरा लगाया जाता है। इसको बांयीं बगल में दबाकर दाहिने हाथ से डण्डी द्वारा बजाया जाता है।

विमर्श—इस वाद्य का नामोल्लेख जैनागमों में अनेक स्थलों पर हुआ है। राज. टी. पृ. ४९-५० में भंभा को ढक्का का पर्याय माना है जो कि अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत आता है। ज्ञाता. १७/२२ में भंभा को वीणा के अन्तर्गत लिया है। बहुत संभव है—जिस प्रकार झालरि नाम के दो वाद्य अवनद्ध और घनवाद्य के रूप में प्रचलित थे, उसी प्रकार भंभा भी वीणा के रूप में विकसित हो। किंतु भंभा नामक वीणा का वर्णन अप्राप्य होने के कारण प्रस्तुत शब्द को अनवद्ध वाद्य के अन्तर्गत लिया है।

भामरी (भ्रामरी) राज. ७७, ज्ञाता १७/२२

भ्रामरी वीणा, रुद्र वीणा, शिव वीणा, तंजोरी वीणा

आकार—किन्नरी वीणा के सदृश।

विवरण—भारतीय संगीत में कुछ वर्षों पूर्व तक सर्वाधिक लोकप्रिय स्थान रखने वाली इस वीणा का दंड चौड़े तथा कोमल बांस का बना होता है। इसके एक छोर के नीचे एक चपटा मेरु होता है। इसके दंड के नीचे दो बिना कटे तुम्बे विचित्र वीणा की ही भांति लगे होते हैं। सुरों के लिए चार मुख्य तंत्रियां होती हैं, जिनके नीचे बांस के दंड पर मोम से जुड़े सीधे खड़े पतले चार पर्दे होते हैं। एक हाथ की अंगुलियां जब तंत्रियों को छेड़ती हैं, दूसरा हाथ पर्दों के ऊपर उन्हें रोकता है। मुख्य तंत्रियों के अतिरिक्त दो सहायक तंत्रियां होती हैं तथा दंडों के दूसरी ओर भी एक तंत्री लगी होती है।

संगीत पारिजात एवं संगीत सार में रुद्र वीणा के छह भेद और बताये गये हैं। इन समस्त भेदों को तार की संख्या के आधार पर प्रतिपादित किया गया है—

१. जिस रुद्र वीणा में दो तार लगे हों, उसे नकुली वीणा कहते हैं।

२. जिस रुद्र वीणा में तीन तार लगे हों, उसे त्रितंत्री वीणा कहते हैं।

३. जिस रुद्र वीणा में चार तार लगे हों, उसे राजधानी वीणा कहते हैं।

४. जिस रुद्र वीणा में पांच तार लगे हों, उसे विपंची वीणा कहते हैं।

५. जिस रुद्र वीणा में छह तार लगे हों, उसे सर्वरी वीणा कहते हैं।

६. जिस रुद्र वीणा में सात तार लगे हों, उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवादिनी वीणा कहते हैं।

यद्यपि इस वीणा को बजाने वाले अब बहुत कम लोग हैं, फिर भी रबाब आदि की भांति अभी इसका सर्वथा लोप नहीं हुआ है।

आगम काल में इसे भ्रामरी वीणा कहते थे, यही वीणा सामान्य परिवर्तन के साथ १३वीं शताब्दी में तंजोरी, १६-१७वीं शताब्दी के आसपास सरस्वती एवं रुद्र वीणा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

भेरी (भेरी) औप. ६७, निसि. १७/१३६, राज. ७७, नंदी गा. ४४, अनु, ५२२, दसा. १०/१७, पज्जो. ६४,७५

भेरी

आकार—बेलनाकार।

विवरण—यह वाद्य अति-प्राचीन वाद्य था, जिसका प्रयोग युद्धों, जुलूसों तथा विवाहोत्सवों आदि पर होता था। युद्ध की चीख-पुकार, सैनिकों में उत्साह का संचार तथा शत्रुओं में आतंक फैलाने के लिए प्रयुक्त ढोल-वादन में अन्य तत-वाद्यों के साथ भेरी का प्रयोग किया जाता था।

१३वीं शती में लिखे गये "संगीत-रत्नाकर" में जो कि संगीत पर रचे सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में से एक माना जाता है, भेरी का संक्षिप्त वर्णन मिलता है—इस वाद्य का ढोल तांबे का बना होता है। यह लगभग ६५ सेन्टीमीटर लम्बा और दो मुखों में प्रत्येक २५ सेन्टीमीटर व्यास का होता है। एक मुख हाथ से बजाया जाता था और दूसरा कोण से। उस समय भेरी की अनेक किस्में विकसित थीं, जैसे—मदन भेरी, रण भेरी, आनन्द भेरी, महा भेरी आदि। आज भी भेरी की बेलनाकार अनेक किस्में प्राप्त होती हैं, जिनका प्रयोग अनेक कार्यों के लिए किया जाता हैं।

विमर्श—भग. टी. पृ. २१७ में भेरी को महाढक्का, भग. टी. पृ. ४७६ में महाकाहला तथा राज. टी. पृ. ४९-५० में भेरी को ढक्का का पर्याय माना है। यह विमर्शनीय है। संगीत ग्रंथों में भेरी, ढक्का और काहला भिन्न-भिन्न वाद्य के रूप में वर्णित है।

मकरिय (मकरिक) निसि. १७/१३८

मकर, पट्टवाद्य, श्रीपर्णी।

आकार—चौखटाकार।

विवरण—यह वाद्य बेंत काष्ठ का चौखटाकार बनाया जाता है, जो ३२ अथवा ३० अंगुल लम्बा तथा एक हाथ चौड़ा होता है। सारका सदृश ऊपर-नीचे तार से बंधा होता है। इस तार में छोटे-छोटे छल्ले लगे होता हैं। इसे वक्ष के सामने अथवा गोद में रखकर अंगूठे तथा अंगुलियों में राल लगाकर घिसते हुए बजाया जाता है।

वर्तमान में इस प्रकार के वाद्य का प्रयोग नहीं के समान है। कई संगीतज्ञों ने इसे मंडल वाद्य कहा है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—संगीत रत्नाकर)

मड्डय (मड्डक, मड्डय) निसि. १७/१३६, राज. ७७

मादल, मड्डलम्

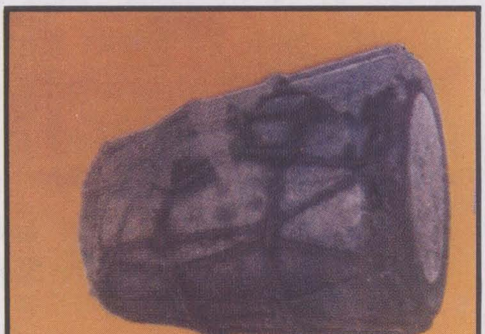

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकार–मृदंग के सदृश।

विवरण–इस वाद्य का ढांचा मिट्टी से बेलन के आकार का बनाया जाता है। इसका एक मुंह छोटा व दूसरा बड़ा होता है। छोटा, जिसे नारी कहते हैं, १०-१२ अंगुल चौड़ा होता है व बड़ा मुंह जिसे नर कहते है, १६ अंगुल चौड़ा होता है। इस पर हिरण या बकरे की खाल मढ़ी जाती है। इसकी खाल सीधी डोरियों द्वारा कसी जाती है। मादल में छल्ले नहीं लगाये जाते। स्वर को ऊंचा और नीचा करने के लिए इसके दोनों मुखों पर यव का आटा लगाया जाता है। विशेष रूप से यह वाद्य भील और गरासिया जाति द्वारा बजाया जाता है। भीलों के विवाह में, मन्दिरों में यह बहुत सुनने में आता है। इसकी आवाज बहुत तेज होती है। मुख्य रूप से इसका प्रयोग जातीय नृत्य मंडलियों में होता है। बंगाल तथा बिहार की भील तथा सन्थाल जातियों के मादल से यह भिन्न है।

मद्दल (मर्दल) दसा. १०/२४, राज. ७७

मर्दल

आकार–मृदंग के सदृश

विवरण–यह एक प्राचीन अवनद्ध वाद्य था, जिसे मध्यकालीन एवं आधुनिक संगीतज्ञों ने मृदंग का ही पर्याय माना है। एक मध्यकालीन लेखक ने मर्दल का वर्णन किया है, जिसके अनुसार मर्दल लगभग ४० सेन्टीमीटर लम्बा तथा बीच में फूला, लकड़ी से बना वाद्य है। इसके एक मुख का व्यास २४ सेन्टीमीटर तथा दूसरे मुख का व्यास लगभग २५ सेन्टीमीटर होता है। दोनों मुखों पर पके चावल में राख मिलाकर लेप किया जाता है।

विमर्श–सारंग देव (संगीत रत्नाकार वाद्याध्याय १०२७) तथा डॉ. लालमणि मिश्र ने (भारतीय संगीत वाद्य पृ. ९६) मर्दल को मृदंग का ही पर्याय माना है, जो ठीक प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि राज. ७७ में मृदंग, मुरज और मर्दल का भिन्न-भिन्न वाद्यों के रूप में नामोल्लेख हुआ हैं।

राज. टी. पृ. ४९-५० में "मर्दल–उभयतः समः वाद्यविशेषः" कहकर मर्दल के मुखों को समान बतलाया हैं। संभव है कि इस प्राचीन वाद्य का लोप मध्यकाल से पूर्व ही हो गया हो।

महति, महती (महती) जीवा. ३/५८८, जम्बू. ३/३१, राज. ७७

महती वीणा, महावीणा, नारद वीणा, मत्तकोकिला वीणा, वन वीणा।

आकार–संतूर के सदृश।

विवरण–महती वीणा का उल्लेख जैनागमों व संगीत के ग्रंथों में प्राप्त है। यह एक प्राचीन वीणा थी, जिसे नारद की वीणा भी कहते थे। नान्यदेव ने भरत भाष्य में महती वीणा को इक्कीस तार वाली कहा है। कोलकाता संग्रहालय में महती वीणा नाम से जो वीणा प्राप्त है, उसमें भी इक्कीस तार हैं। उक्त वीणा को ही कई विद्वानों ने महती वीणा माना है। किन्तु जम्बू. टी. पृ. १०१ और राज. टी. पृ. ४९ में महती को शततंत्रिका वीणा" कहकर इसे सौ तार वाली वीणा कहा है। बी. चैतन्य देव ने (वाद्य यंत्र पृ. ९६) सौ तार वाली वन वीणा अथवा महावीणा का वर्णन किया है, जिसे डंडियों से बजाया जाता था। वाद्य यंत्र के दंड में दस छिद्र होते थे और प्रत्येक छिद्र से दस तार निकलते थे। इस प्रकार कुल मिलाकर सौ तार होते थे। कुछ विद्वानों ने वन वीणा को ही महती वीणा का मूल स्वरूप माना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाभेरी (महाभेरी) ठाणं ७/४२ अनु. ३०१

महाभेरी

आकार–सामान्य भेरी से बड़ा।

विवरण–इस वाद्य का निर्माण तांबे से होता था। इसकी ध्वनि तीव्र एवं गंभीर होती थी। इसे शंख के साथ बजाया जाता था।

(विवरण के लिए द्रष्टव्य–भेरी)

मुइंग (मृदंग) राज. ७७, औप. ६७,६८ ठाणं ७/४२, ८/१०, दसा. १०/१७,१८, प्रज्ञा. २/३०, जम्बू. २/१२

मृदंग, पखावज

आकार–ढोलक के सदृश अवनद्ध वाद्य जिसका एक मुख संकीर्ण तथा दूसरा मुख विस्तृत होता है।

विवरण–इस वाद्य का वर्णन जैनागमों, बौद्ध पिटकों एवं प्राचीन संगीत के ग्रंथों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। आज भी मृदंग की अनेक किस्में अलग-अलग नामों से प्राप्त होती हैं। जैसे–दक्षिण भारत का मृदंगम्, हिन्दुस्तानी संगीत का पखावज और बंगाल का खोल आदि आकार और संरचना में असमानता होते हुए भी मृदंग ही कहे जाते हैं।

दक्षिण में मृदंगम् ही एक ऐसा वाद्य है, जो शास्त्रीय संगीत सभाओं में संगत के लिए प्रयोग किया जाता है। कर्नाटकीय संगीत में प्रचलित 'मृदंगम्' अपने आप में अद्‌भुत है, जिसका वर्णन इस प्रकार है–इस वाद्य यंत्र का खोल लकड़ी का होता है और लगभग ६० सेन्टीमीटर लम्बा होता है। जैसाकि इस संदर्भ में आवश्यक ही है, यह बीच से फूला होता है और इसका एक मुख दूसरे से बड़ा होता है। दायां मुख बांएं की अपेक्षा कुछ छोटा होता है। मुखों की संरचना भी कुछ भिन्न होती है। इस वाद्य पर वादन से तुरन्त पहले आटे की लोई मध्य भाग में लगा दी जाती है, इसे वादन के उपरांत हटा दिया जाता है। लकड़ी के टुकड़े और पत्थर से दायें पिन्नल को ठोक बजाकर वाद्य को मिलाया जाता है। जिस वाद्य को उत्तर भारतीय मृदंग अथवा पखावज के नाम से जानते हैं उसी को दक्षिण भारत में मृदंगम् कहते हैं। पखावज का आकार-प्रकार मृदंगम् जैसा ही है, केवल बनावट में थोड़ा अन्तर प्रतीत होता है। जो इस प्रकार है–मृदंगम् के समान यह भी लकड़ी का बना होता है, थोड़ा सा अधिक लम्बा, इसमें झिल्लियां भी कई होती हैं किन्तु उनका व्यास थोड़ा अलग होता है। दक्षिण के वाद्यों की तरह इसके भी दायें मुख पर एक काले मिश्रण का लेप किया जाता है, जिसे स्याही कहते हैं। बायीं ओर इसमें भी मृदंगम् की तरह आटे का लेप लगाया जाता है। आकृति और माप के अतिरिक्त एक जो आम अन्तर है इन दोनों वाद्यों में, वह यह है कि पखावज में एक छोड़कर एक डोरी के नीचे लकड़ी के गुटके लगे होते हैं जिन्हें सुर के साथ मिलाने के लिए ऊपर-नीचे किया जा सकता है।

आधुनिक युग में मृदंग के दक्षिण मुख में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आटे अथवा मिट्टी की पूलिका के स्थान पर लोहे के चूर्ण आदि से बना मसाला लगाया जाता है।

विमर्श—सारंग देव ने (संगीत रत्नाकार वाद्याध्याय १०२७) मृदंग को मुरज और मर्दल का पर्याय माना है। अभिनव गुप्ताचार्य ने (नाट्य शास्त्र ३४ अध्याय पृ. ४६०) मुरज का पर्याय माना है। डॉ. लालमणि मिश्र ने (भारतीय संगीत वाद्य पृ. ९५) मुरज और मर्दल का पर्याय माना है। यह विमर्शनीय है क्योंकि राज. ७७, औप. ६७, दसा. १०/१७,१८ में मुरज के बाद मृदंग शब्द आया है, जो दो भिन्न वाद्यों का सूचक है। ब्री. चैतन्य देव ने (वाद्य यंत्र पृ. ४२-४३) भी मुरज और मृदंग को दो भिन्न-भिन्न वाद्य मानते हुए उपरोक्त कथन की पुष्टि की है।

मुगुंद, मगुंद (मुकुन्द) राज.७७, जीवा. ३/५८८

श्री खोल, खोल, मुकुन्द, मकंद।

आकार—मुरज सदृश।

विवरण—यह एक अति प्राचीन अवनद्ध वाद्य है, जिसकी अनेक किस्में अलग-अलग क्षेत्रों में पाई जाती हैं। भक्ति और कीर्तन के साथ इस वाद्य का गहरा संबंध है। कहते हैं—चैतन्य देव महाप्रभु का यह प्रिय वाद्य था।

यह वाद्य लगभग पौन मीटर लम्बा होता है, दूसरे मुख की अपेक्षा एक मुख काफी चौड़ा होता है। यह लकड़ी या पकी मिट्टी का होता है और मृदंग की भांति कई पर्तों वाले दो मुख का होता हैं।

यह बंगाल में खोल, श्री खोल, मणिपुर, नागालैंड में मुकुंद, मकंद, पुंग आदि नामों से जाना जाता है।

मुरय, मुरव (मुरज) निसि. १७/१३९, राज. ७७, दसा. १०/१७, पज्जो. ७५, अनु. ३७५, औप. ६७

मुरज, मुरसु (तमिल), मुरव (इंडोनेशिया)

आकार—मृदंग के सदृश।

विवरण—मुरज का आकार भी मृदंग और मर्दल जैसा ही प्रतीत होता है लेकिन उसके बजाने वाले मुख अपेक्षाकृत छोटे थे। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त संगम काल के तमिल साहित्य में मुरसु की कई किस्मों का वर्णन मिलता है यथा—वीर मुरसु (युद्ध वाद्य), त्याग मुरसु (जिसका वादन दान या अनुदान की घोषणा के लिए होता था) आदि।

मुरज का चलन इंडोनेशिया में होने के प्रमाण हैं जहां इसका नाम मुरव हो गया।

विमर्श—सारंग देव ने (संगीत रत्नाकार वाद्याध्याय १०२७) मुरज को मृदंग का पर्याय माना है। अभिनव गुप्ताचार्य ने (नाट्य शास्त्र ३४ अध्याय पृ. ४०५) भी उक्त कथन की पुष्टि की है। यह विमर्शनीय है क्योंकि राज. ७७ दसा.१०/१७ में मृदंग और मुरज का भिन्न-भिन्न वाद्य के रूप में नामोल्लेख हुआ है। यह संभावना की जा सकती है—आकार-प्रकार की साम्यता के कारण मध्यकालीन एवं आधुनिक संगीतज्ञों ने मुरज को मृदंग का ही पर्याय मान लिया।

रगसिगा (रगसिगा) जीवा. ३/५८८

रगसिगा, रणसिगा, रणसिंग वक्री, रणसिंग

आकार—शहनाई सदृश।

विवरण—यह एक प्राचीन सुषिर वाद्य था, जिसकी अनेक किस्में आज भी प्राप्त होती हैं। यह तीन हाथ लम्बी तांबा अथवा पीतल की खोखली नली,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो तीन स्थानों से कटोरीनुमा बनी हो, रणसिंग वक्री कहलाती है।

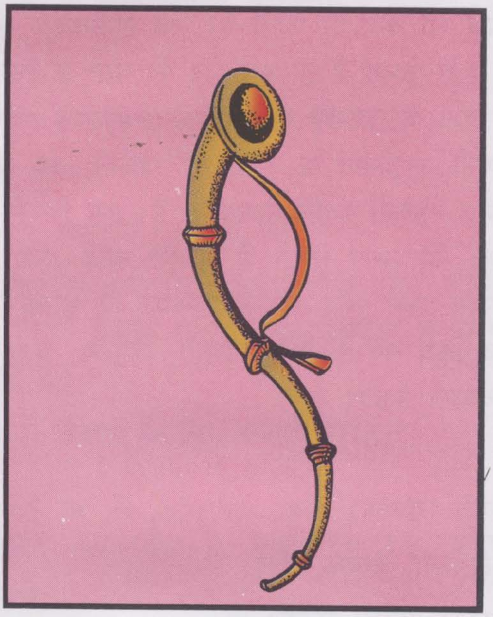

PG. 35 (1)

इसमें षड्ज, पंचम की ध्वनियां निकलती हैं। इसको प्रचार में रणसिंग, रगसिगा कहते हैं।

रिंगिसिया (रिंगिसिया, रिंगिसिका) राज. ७७

रिङ्गिसिका, घर्षण वाद्य, रिगाब्रैया।

आकार—दांते युक्त बांसुरी के सदृश।

विवरण—इस वाद्य का निर्माण मुख्यतः बांस की नलिका से होता है। लगभग ५० सेमी. लम्बे बांस के खोखले टुकड़े लेकर, उसकी सतह पर ढ़ेरों आड़े-तिरछे दांते कर दिये जाते हैं। इसकी दीवार में प्रायः एक छोटी सी दरार भी कर दी जाती है, जिससे घर्षण करने वाले यंत्र के द्वारा अधिक गूंज उत्पन्न हो सके। कभी-कभी अधिक गूंज पैदा करने के लिए इसमें एक छोटा तुम्बा भी लगा देते हैं। छड़ी के द्वारा घर्षण करने पर एक प्रकार की ध्वनि पैदा होती है। जम्बू. टी. पृ. १०१ में भी इसे घर्षण के द्वारा स्वर उभारने वाला वाद्य कहा है।

लोक संगीत व कबीलाई संगीत में इसे मुख्य रूप से प्रयोग में लेते हैं।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय वाद्य गलु)

रिगिसिगी (रिगिसिगी) जम्बू. ३/३१

रिगिसिगी, रापोणि (आसाम) घर्षण वाद्य।

आकार—बांस की एक मीटर लम्बी छड़ी।

विवरण—यह वाद्य किरिकिट्टक और रिंगिसिका की जाति का वाद्य है। इसे कुछ-कुछ वायलिन की तरह पकड़ा जाता है और उसी हाथ में पकड़ी हुई एक कौड़ी को बांस के दांतों पर तेजी से ऊपर-नीचे चलाया जाता हैं, जिसके घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होती है। आसाम में इसे रापोनि कहते हैं। कबीलाई व लोक संगीत में इस वाद्य की अनेक किस्में प्रयोग में आती हैं।

लत्तिय (लत्तिय) निसि. १७/१३८, राज. ७७, आ. चू. ११/२

लत्तिय, ब्रह्मतालम्, कांस्यवाद्य।

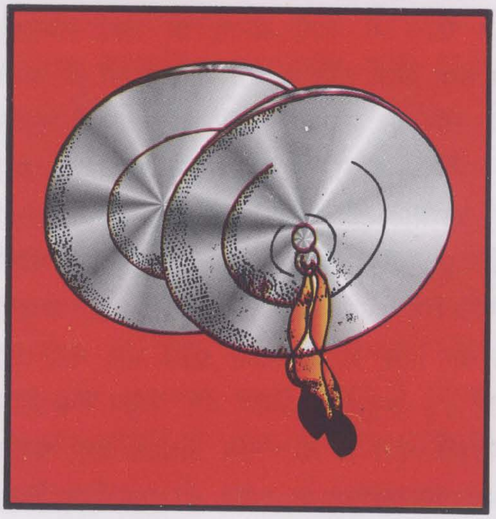

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकार—तश्तरी सदृश।

विवरण—यह वाद्य कांसे का बनाया जाता है, जिसका एक भाग चपटा और ऊपर की ओर उभरा रहता है। इस वाद्य को पकड़ने के लिए इसके गोल चपटे भाग में डोरी डालकर उन्हें संबद्ध कर दिया जाता है। इसका प्रयोग ढ़ोल बजाते समय अथवा नृत्य के साथ किया जाता है। (विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—संगीत वाद्य गलु)

वंस (वंश) निसि. १७/१३९, नंदी. गा. ३८, राज. ७७, जम्बू. ३/३१

वंशी, बांसुरी

आकार—वेणु के सदृश।

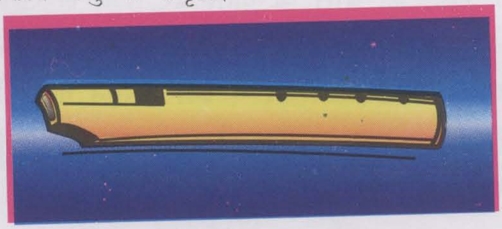

विवरण—यह भारत का अति प्राचीन सुषिर वाद्य है, जिसे प्रायः मेले आदि के अवसर पर बिकते हुए देखा जाता है। आधुनिक युग में बांसुरी की अनेक किस्में प्राप्त हैं।

प्राचीन काल में वंशी बनाने के लिए चिकना, सीधा तथा बिना गांठ के बांस का प्रयोग तो करते ही थे, खैर की लकड़ी, हाथी दांत, लाल चन्दन तथा सफेद चन्दन की भी बांसुरी बनती थी। लोहा, कांसा, चांदी, सोना आदि की भी बांसुरियां बनाई जाती थीं। बांसुरियां गोल आकार की सीधी तथा चिकनी होती थीं। प्रायः कनिष्ठा अंगुली प्रवेश कर सके इतनी पोली होती थी। वंशी की लम्बाई १० अंगुल से लेकर ३५ अंगुल तक होती है। ऊपरी भाग में दो, तीन अथवा चार अंगुल छोड़कर एक अंगुल के प्रमाण से एक छेद किया जाता है, जिसे मुखरन्ध्र कहते हैं। बांसुरी की लम्बाई के अनुपात में ४ से १५ तक छेद किये जाते हैं। मुखरन्ध्र के पास वादन के लिए एक चोंच सी बना दी जाती है। जब संगीतकार चोंच से हवा फूंकता है तो इस छेद की पत्ती के किनारों से हवा के टकराने से ध्वनि पैदा होती है। वादक अपनी अंगुलियों से रन्ध्रों को खोलते, बंद करते समय सुरीली ध्वनि निकालता है। इस किस्म की वंशी को उत्तर भारत में बांसुरी कहा जाता है। संगीत सार और संगीत रत्नाकर में इसके १४ भेद किये गए हैं—जैसे उमापति, त्रिपुरुष, चतुर्मुख, पंचवक्त्र आदि।

वच्चग (वच्चक) जीवा. ३/५८८, जं. प्र. १०१

अलगोजा, वच्चक, बीन।

आकार—सतारा सदृश।

विवरण—यह एक प्राचीन वाद्य है। लोक संगीत में इसका विशेष प्रयोग होता रहा है।

इसे बांस अथवा लकड़ी को पोला कर के बनाया जाता है। इसमें दो बांसुरी रहती हैं, जिनमें चार-चार छिद्र होते हैं, जिन्हें एक साथ फूंका जाता है। इसमें दोनों हाथों का प्रयोग होता है तथा प्रत्येक बांसुरी पर तीन-तीन अंगुलियां रखी जाती हैं। इस वाद्य से संगति भी होती है और स्वतंत्र रूप से भी वादन किया जाता है।

इस वाद्य का स्वर बहुत ऊंचा होता है फलतः इसके साथ गाने वाले भी बहुत ऊंचे स्वर से गाते हैं। सिन्धु प्रदेश में साधारण अंतर के साथ इसे वच्चक कहते हैं। राजस्थान के अलवर जिले में मेव इसे गीतों के साथ बजाते हैं। राजस्थान के लंगाओ ने इसके आंतरिक गुण का उपयोग कर इसे लोक संगीत के योग्य बनाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वद्धीसग (वद्धीसग) निसि. १७/१३७

वद्धीसक, बुआंग, धनुषाकार वाद्य।

(विवरण के लिए द्रष्टव्य—बद्धीसग)

वरमुरय (वरमुरज) प्रश्न व्या. १०/१४

श्रेष्ठ मुरज

आकार—सामान्य मुरज से बड़ा।

विवरण—यह वाद्य मुरज की ही एक श्रेष्ठ प्रजाति थी, जिसे विशेष अवसरों पर उपयोग में लिया जाता था।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—मुरज)

वल्लकि (वल्लकी) प्र. व्या. १०/१४, ज्ञाता. १७/२२

वल्की

विवरण—यह एक प्राचीन वीणा थी जिसका उल्लेख जैनागमों एवं संगीत ग्रंथों में प्राप्त होता है। संगीतोपनिषत्सारोद्धार ४/९ में इस वीणा का मात्र उल्लेख हुआ है। अभिधान चिंतामणि में "चंडालानां तु वल्लकी" कहकर इसे चंडालों की वीणा माना हैं। किंतु किसी भी ग्रन्थ में इसके स्वरूप तथा वादन संबंधी कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। अतएव इसके स्वरूप आदि के संदर्भ में कुछ भी कहना संभव नहीं है।

वाली (वाली) राज. ७७

आडी वंशी, वाली

आकार—बांसुरी के सदृश।

विवरण—आड़ी बांसुरी संपूर्ण देश में सर्वाधिक लोकप्रिय और सुपरिचित है। यह अपने वर्ग का ऐसा अकेला वाद्य भी है जिसे आदिवासी, लोक और शास्त्रीय संगीत तक प्रचलित होने का गौरव प्राप्त है। इसका कारण आड़ी बांसुरी का वैविध्यपूर्ण होना प्रतीत होता हैं। भारतीय संगीत अपनी आवृत्तियों के सूक्ष्म अंतर की उत्कृष्टता तथा अदाकारी में बहुत समृद्ध है। पहले को श्रुति और दूसरे को गमक कहा जाता है। यह अंगुलियों के चपल संचालन, फूंक जनित हवा के दबाव तथा बांसुरी के अधर पर रखने के कोण में अंतर लाकर किया जाता है।

यह वाद्य एक सिरे पर खुला और दूसरी ओर से बंद होता है। बंद सिरे से कुछ ही सेमी. नीचे एक छेद फूंक मारने के लिए होता है, जिसको मुहाना या फूंक मारने का रन्ध्र कहते हैं। वाद्य यंत्र में थोड़ी-थोड़ी दूर पर अनेक रन्ध्र होते हैं, जिनके ऊपर अंगुली के संचालन से धुन बजायी जाती है। इसका निर्माण बांस, पीतल, चांदी आदि से किया जाता है।

वालिया (वालिका) निसि. १७/१३८

कटोला, सूप वाद्य, वालिका।

आकार—विषम चतुर्भुजाकार खोखला वाद्य।

विवरण—यह वाद्य प्राचीन समय में पूरे भारत में अलग-अलग नामों से प्राप्त होता था, जिसे वर्तमान में कटोला वाद्य, सूप वाद्य, वाली वाद्य कहते हैं।

मध्यप्रदेश के आबुल मारिआ संगीत और नृत्य में इस वाद्य का प्रयोग करते हैं। यह काष्ठ से निर्मित कुछ-कुछ सूप जैसा होता है। लंबाई की ओर खुला रहता है ताकि उस ओर की तंग झिरी के माध्यम से अंदर से उसे खोखला किया जा सके। यह घन-वाद्य वादक के गले में लटका रहता है और छड़ियों से पीटकर बजाया जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—वाद्य यंत्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचित्तवीणा पा. (विचित्र वीणा पा.) ज्ञाता. १७/२२

विचित्र वीणा

आकार—आधुनिक सितार के सदृश।

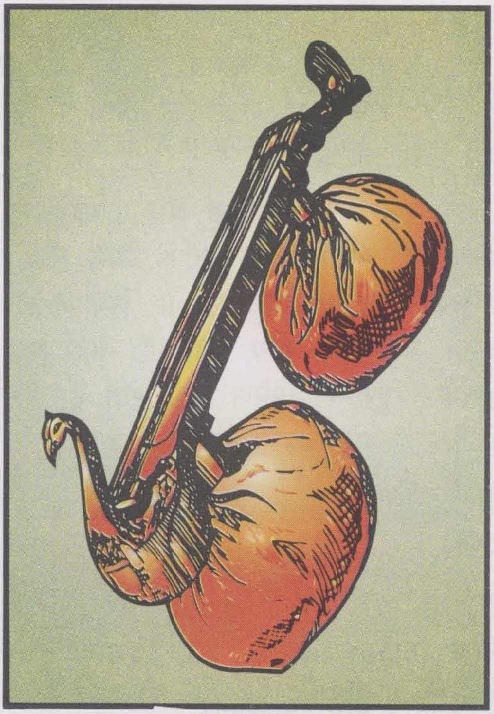

विवरण—विचित्र वीणा भारतीय संगीतकारों द्वारा बजाया जाने वाला बिना पर्दों का सितार है। इसका दंड लगभग सवा मीटर लंबा होता है। इसमें दोनों ओर दो बड़े तुंबे लगे होते हैं। जैसे कि अन्य समकालीन वीणाओं में होता है, इसमें भी दंड के एक ओर विशाल मेरू होता है और दूसरी ओर तंत्रियां भी होती हैं जिन्हें चिकारी कहा जाता है, जो सुर देने को छेड़ी जाती हैं, मुख्य तार भी मिजराब पहनी अंगुलियों से बजाये जाते हैं। राग बजाने के लिए कोच के एक गोले से उन्हें दबाया और छोड़ा जाता है। मुख्य तारों के नीचे लगभग एक दर्जन या उससे अधिक तार लगे होते हैं जिन्हें तरब कहा जाता है, जो ठीक तरह से मिले होने पर मुख्य तारों के साथ बजाते हुए अतिरिक्त झंकार उत्पन्न करते हैं।

विचित्र वीणा का वादन अत्यंत कठिन होने के कारण तथा तानसेन के वंशजों द्वारा रुद्र-वीणा रबाब को अपनाये जाने के कारण मध्ययुग में इसका प्रायः लोप हो गया था, किंतु इन दिनों यह अपने विकसित रूप में फिर प्रचार में आ रही है। यद्यपि अब भी इस वीणा को बजाने वाले देश में इने-गिने लोग ही हैं। सामान्य रूप से यह देखने में ऐसी प्रतीत होती है, मानो रुद्र वीणा से परदें निकाल दिये गये हैं, और सब कुछ वही है। किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों का अंतर स्पष्ट हो जाता है।

विपंचि (विपञ्ची) निसि. १७/१३७, राज. ७७. आ. चू. ११/२

विपञ्ची, नौतंत्री वीणा।

आकार—तम्बूरा सदृश।

विवरण—चित्रा वीणा की भांति इस वीणा को भी अंगुलियों से बजाया जाता था। वैदिक युग के पश्चात् जिन तंत्री वाद्यों का विकास हुआ, उनमें विपंची का नाम मुख्य है। महर्षि भरत ने इसको प्रमुख वीणाओं में माना है। इस वीणा में नौ तंत्रियां होती थी जिन्हें सात शुद्ध तथा अन्तर काकली युक्त स्वरों में मिलाया जाता था। वर्तमान में इस नाम की कोई वीणा प्रयोग में नही आती।

विमर्श—नान्यदेव ने भरत भाष्य में और सारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में ''विपञ्च्यां नवतंत्रीषु'' कहकर विपंची को नौ तंत्री वीणा कहा है। जबकि राज. टी. पृ. में ''विपंची त्रितंत्रीवीणा''—विपंची को त्रितंत्रीवीणा माना है। हो सकता है कि आगम काल में विपंची युक्त वीणा हो, जो बाद में नौ तंत्री वीणा के रूप में विकसित हो गई हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीणा (वीणा) निसि. १७/१३७, राज. ७७,' अनु. २५०, जीवा.३/२८५, प्रश्न व्या. १०/१४

वीणा

आकार—विभिन्न आकार वाला तंत्री युक्त वाद्य।

विवरण—जैनागमों, वेदों एवं उत्तरवर्ती ग्रंथों में वीणाओं का विशद वर्णन प्राप्त होता है। तंत्री युक्त सभी प्रकार के वाद्यों को वीणा के अन्तर्गत अथवा तत् वाद्यों के अन्तर्गत माना गया। प्राचीन समय में एक तंत्री वीणा से लेकर शत तंत्री वीणा तक का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे—अलाबु वीणा, एकतारा, आलापिनी, चित्रा, विचित्रा, भ्रामरी, किन्नरी, बल्लकी, विपंची—नौ तंत्री युक्त वीणा, महती तथा वाण वीणा—शत तंत्री युक्त वीणा आदि। प्राचीन ऐसे अनेक वीणाएं हैं, जो वर्तमान में प्राप्त नहीं होतीं जैसे—चित्रा, महती विपंची आदि। संगीत रत्नाकर, संगीतसार आदि ग्रंथों में वीणाओं के आकार-प्रकार एवं वादन-विधि का उल्लेख प्राप्त होता है।

वेणु (वेणु) निसि. १७/१३९, जीवा. ३/५८८, आ. चू. ११/४, भग. २१/१७

वेणु

आकार—वंशी सदृश।

विवरण—यह एक प्राचीन सुषिर वाद्य है। इसका उल्लेख जैनागमों, वेदों एवं उत्तरवर्ती ग्रंथों में प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार वाली वेणु का निर्माण प्रायः बांस की नलिका द्वारा किया जाता है।

वेणु की लम्बाई आवश्यकता पर निर्भर करती है और उसके अनुसार बदलती रहती है। छोटी वेणु तेज गति और ऊंची आवाज के लिए तथा बड़ी, वेणु धीमी गति और नीची आवाज के लिए होती है।

वेणु पलासिय (वेणु पलासिय) सूय. १/४/३८

मूर्सिंग, भूर्चंग, मुख-चंग, वेणु पलासिय, मोर-चंग।

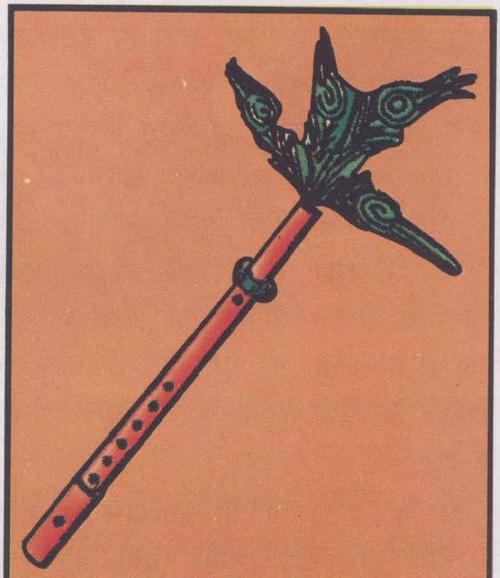

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकार–त्रिशूल के सदृश।

विवरण–यह वाद्य मुख्यतः बांस का ही बनाया जाता था, किंतु अब लोहे का भी बनाया जाता है। यह सात-आठ सेंटीमीटर लंबाई का एक छोटा-सा लोक-वाद्य है, जो राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश के ब्रज क्षेत्रों में पाया जाता है। किन्तु दक्षिण भारतीय संगीत सभाओं में मृदंग, घट तथा खंजीरा वाद्यों के साथ सहायक ताल-वाद्य के रूप में इसका बहुत इस्तेमाल होता है। इस वाद्य का मुख्य चौखटा गोलाकार होता है, जिसका वृत्त पूरा नहीं होता। इस अधूरे वृत्त के दोनों अंतिम छोर लंबे कांटों के रूप में बाहर निकले रहते हैं। इन दोनों कांटों के बीच की जगह में एक पतली जीभ रहती है, जिसका एक सिरा चक्र के भीतरी हिस्से से जुड़ा रहता है और दूसरा सिरा मुक्त होता है। दोनों कांटों से यह थोड़ी सी अधिक लम्बी भी होती है। वादक भूचंग को एक हाथ से पकड़कर उसके दोनों कांटे वाले स्थल को अपने दांतों के बीच मजबूती से पकड़े रहता है। अब वह दूसरे हाथ की अंगुलियों से दोनों कांटों के बीच वाली जीभ को वीणा के तार के समान छेड़कर झंकृत करता है। वादक का मुख इस क्रिया में गूंज उत्पन्न करने वाले अनुनादक का कार्य करता है। इस प्रकार मुख की आकृतियां बदल-बदल कर तथा सांस पर नियंत्रण रखते हुए वादक अत्यंत परिष्कृत एवं कोमल ध्वनियां पैदा करता है। हिन्दी साहित्य में इस वाद्य को मुख-चंग भी कहा गया है, क्योंकि यह मुख अर्थात् मुंह में रखकर बजाया जाता है।

सूय. टी. पृ. ११६ से भी उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है। इसे सुषिर वाद्य और घन वाद्य–दोनों ही कह सकते हैं। लोक वाद्यों को सम्मिलित बजाते समय मुख-चंग की ध्वनि अपना एक अल्ग ही आकर्षण रखती है।

वेवा (वेवा) निसि. १७/१३९

पेपा, वेवा (तिब्बत)

आकार–जुड़ी हुई दो नलिकाओ के सदृश।

विवरण–यह वाद्य हमारे देश के सभी भागों में नहीं पाया जाता। इसमें लगभग २० सेंटीमीटर लम्बी दो नलियां होती हैं, जो रन्ध्रों के पास आपस में जुड़ी होती हैं। एक सिरे पर एक पत्ती अथवा रीड होती है, जो या तो बांस की नली से ढकी होती है अथवा खुली रहती है। यह सिरा मुंह में रखा जाता है और आवाज पैदा करने के लिए इसमें फूंक मारी जाती है। प्रत्येक नली के दूसरे सिरे पर भैंस का सींग अथवा धातु का चोंगा भोंपू की तरह काम में लाने के लिए लगा होता है।

नृत्य तथा गान की संगति के लिए प्रयुक्त होने वाला यह पेपा वाद्य मुख्य रूप से आसाम में प्राप्त होता है। फूंकने के लिए इसमें विशेष प्रकार की रीड का प्रयोग होता है। इसके एक सींग में वादन के लिए तीन तथा दूसरे में चार छिद्र होते हैं। इसी के सदृश वाद्य को तिब्बत एवं निकटवर्ती क्षेत्रों में वेवा कहा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—भारतीय वाद्य गलु)

संख (शंख) राज. ७७, उत्त. ११/१५, ठाणं ७/४२, दसा. १०/१७, नंदी. ४, अनु. ३०१

शंख

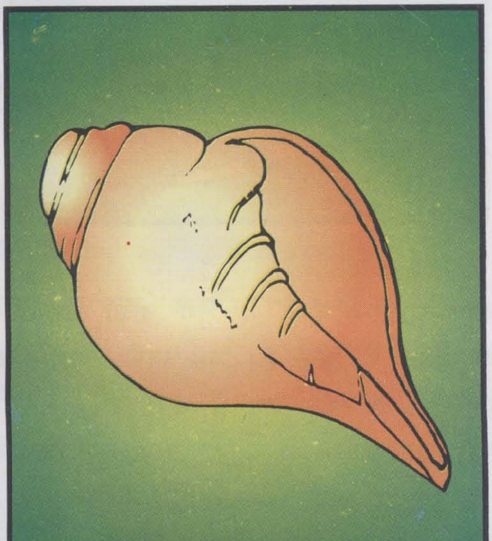

आकार—विभिन्न आकार एवं प्रकार के।

विवरण—शंख भारत का अति प्राचीन सुषिर वाद्य है। आगम युग से ही इसका प्रयोग धार्मिक तथा युद्ध आदि में होता है। प्राचीन काल में शंख के अनेक रूप प्रचलित रहे हैं। विशेष रूप से एक नली बनाकर उसके आदि या अंत में शंख लगाकर वादन की प्रक्रिया प्राचीन काल से पायी जाती है जो संगीत-शास्त्रों के अनुसार मध्य युग तक वर्तमान रही।

आधुनिक काल में शंख का प्रयोग धार्मिक उत्सवों में ही प्रायः होता देखा जाता है जिसका रूप प्राकृतिक ही है।

शंख एक सामुद्रिक जीव का ढांचा है, जो समुद्र से निकाला जाता है। इसकी दो जातियां 'दक्षिणावर्त' तथा 'वामावर्त' नाम से प्रसिद्ध है। संगीत पारिजात के अनुसार वाद्योपयोगी शंख का पेट बारह अंगुल का होता है। उसमें मुख का छेद बेर के बीज के बराबर होता है तथा उसके ऊपर पतली धातु का कलश बनाते हैं। इस कलश को मुख में रखकर शंख को वाद्य की भांति बजाया जाता है।

तानसेन कृत संगीतसार नामक ग्रंथ में पृ. १११पर शंख का विशेष विवरण प्राप्त होता है जो निम्नवत् है—

''जहां शंख ग्यारह अंगुल को लम्बी होय और शुद्ध जाकी नाभी भीतर सों सवांरी होय'' यह तीन धातु को भोंगली के आकार सिखर लगाइए जोमें शंख को मुल आधे सो सिखर लगाइए। तल सिखर के मुख उपर आधे अंगुल के प्रमान छेद करिए। सिखर के भीतर उड़द भावे ऐसों छेद करिए सो संख जानिए। सो या शंख को दोनूं हाथ में लेके (हुं भुं धां दिग दिग) इन पाटाक्षर सो बजाइए।

सणालिय (सणालिय) निसित्र १७/१३८

श्री मंडल, घंटी बाजा, युनलो (चीन), थाली तरंग, सुनाली।

आकार—लगभग डेढ़ मीटर ऊंचा धातु का एक ढांचा।

विवरण—इस प्राचीन घन वाद्य के ढांचे में लोहे या कांसे की ८,१३ या १६ गोल चपटी प्लेटें लटकी रहती हैं। ये प्लेटें भिन्न-भिन्न मोटाई तथा 'व्यास की होती हैं, जिनको सप्तक के मनचाहे स्वरों में मिलाया जा सकता है।

धुन निकालने के लिए इन स्वरों को लकड़ी की डंडी के प्रहार से बजाया जाता है। लोक संगीत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाद्यों में इसे श्री मंडल, थाली तरंग, घंटी बाजा, सुनाली आदि नामों से जाना जाता हैं।

इसे मुख्य रूप से विवाह के अवसरों एवं लोक संगीत में बजाया जाता है।

सदुय (सदुय) निसि. १७/१३६

सदुय, डक्का, डंका।

आकार—हुडुक्का सदृश।

विवरण—यह वाद्य हुडुक्का जाति का ही एक वाद्य है। संगीत ग्रंथों में डक्का के नाम से इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यह एक वालिस्त लम्बा एवं भीतर से पोला काष्ठ का बना होता है। इसका मध्य भाग पतला तथा दोनों मुखों का व्यास आठ अंगुल का होता है।

इसके दोनों मुखों पर चार-चार तांबे की कीलें रखी जाती हैं, जिनमें दो उर्ध्वमुखी तथा दो अधोमुखी होती हैं। इन कीलों में दो-दो तांतें बांधी जाती हैं। इनके दोनों मुख हुडुक्का की भांति चमड़े से मढ़े जाते हैं। इसका बारह अंगुल की शलाका लेकर दाहिने हाथ से वादन किया जाता है। बायें हाथ में हाथी दांत का एक टुकड़ा, जो जवा की भांति होता है, लेकर तांतों को बजाया जाता है। इसमें हुडुक्का के ही पाटाक्षर होते हैं।

संगीत ग्रंथों में इसके निर्माण एवं वादन विधि के अनुसार इसे तत् और अवनद्ध दोनों वाद्यों का रूप माना है।

लोक भाषा में यह सदुय, डक्का, डंका के नाम से जाना जाता है।

सिंग (श्रृंग) राज. ७७

श्रृंग, सिंगि, कोहुक (म. प्र.), सींग।

आकार—गोल, लम्बे, विभिन्न आकार के।

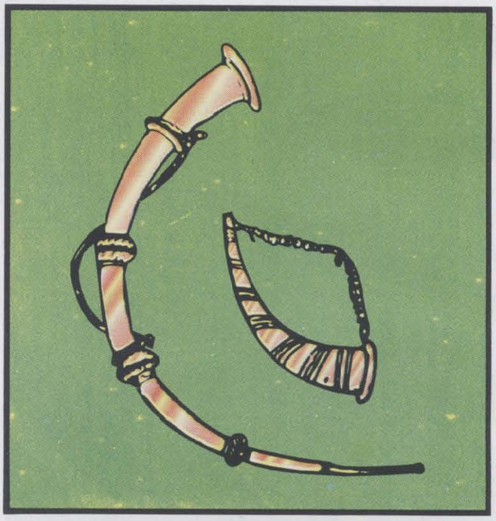

विवरण—प्राचीन वाद्यों में श्रृंग वाद्यों का विशेष महत्त्व रहा हैं और हैं। यह प्राचीन सींग वाद्य पहले बैल के और बाद में धातु के बनने लगे। प्राचीन यहूदी ग्रंथों में बकरी अथवा मेंढ़े के सींग के प्रयोग का वर्णन मिलता है। इनके सींग को भांप में गर्म करके बनाया जाता था ताकि यह कोमल हो जाये तथा इसकी भीतरी मज्जा निकल जाये और सींग मुड़ जाये। नववर्ष के अवसर पर मंदिरों में बजाया जाने वाला सींग बकरी का होता था, जिसका नल सोने से मढ़ा जाता था। उपवास के दिनों में बजने वाले सींग मेंढ़े, गोल और चांदी से मढ़े नल वाले होते थे।

आदिवासी जीवन व्यवहार में श्रृंग शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ भील इसे सींग कहते हैं। मध्यप्रदेश के मड़िया इसे कोहुक कहते हैं। उत्तर-पूर्व के आदिवासी क्षेत्र में 'अगामी' और ल्होटा नागाओं द्वारा भैंसों के सींग का प्रयोग होता है जिसे अंशामी-रेलिकी कहते हैं। वह आधा मीटर लम्बा होता है और नल या माउथ पीस की तरह काम आने के लिए उसमें बांस की एक छोटी सी नली लगी होती है। संथालों के पास 'साकना'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है जो भैसों का सींग है। इस पशु तथा हिरण के सींगों का प्रयोग उत्तर प्रदेश में किया जाता है। पहले को घिसान और दूसरे को सिंगी कहते हैं।

आधुनिक युग में शृंग प्रायः हिरण अथवा बारहसिंगा के सींग से बनते हैं। पीतल के भी शृंग बनाये जाते हैं। हिरण के सींग की बनी हुई सिंगी प्रायः जोगी बजाते देखे जाते हैं। धातु के बने हुए शृंग का वादन राजस्थान, नेपाल तथा दक्षिण में अब भी होता दिखाई पड़ता है।

सुंसुमारिया (शिशुमारिका) राज. ७७

शिशुमारिका

विवरण—यह एक प्राचीन घन-वाद्य था, जिसके आकार-प्रकार के बारे में कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

विमर्श—राज. ७७ के अतिरिक्त प्रस्तुत शब्द का उल्लेख वाद्य के अर्थ में वेदों एवं संगीत ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है। आइने-ए-अकबरी में विचित्रा वीणा को वाद्यों का शुमार कहा है, जो कि तत वाद्य के अन्तर्गत आता है। लेकिन शिशुमार टकराकर बजाए जानेवाला घनवाद्य था।

सुघोस (सुघोष) राज. ७७, जी. ३/७८, जंबू. ५/२२

सुघोष

आकार—घड़ियाल सदृश।

विवरण—जैन व्याख्याकारों ने इसे प्रथम देवलोक में प्राप्त होने वाला इन्द्र का घंटा कहा है, जिसे इन्द्र के आदेश से अनेक कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

हुडुक्क (हुडुक्क) राज. १३, पज्जो. ७५,६४, दसा. १०/१७, औप. ६७, जम्बू. ३/२०९

हुडुक्का, हुडुक, हुडूक (उ. प्र.) हुरुक्का, डेरु, डडुक्की।

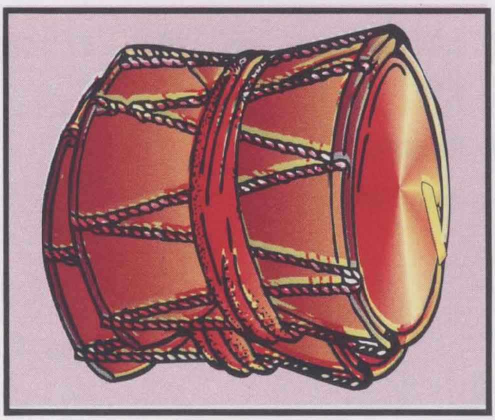

PG. 43

आकार—डमरु से बड़ा।

विवरण—यह दो मुखा अवनद्ध वाद्य १६ अंगुल लंबा तथा बीच में से कुछ पतला होता है। इसके मुख का व्यास आठ-आठ अंगुल होता है। झिल्ली सादी होती है और लगभग डमरु जैसे आकार पर मढ़ी जाती है। इसमें कुछ छेद करके डोरियां कसी जाती हैं। डोरी के अंत में एक अन्य डोरी होती है। इसी को पकड़कर यह वाद्य बजाया जाता है।

स्वर की ऊंचाई-नीचाई के लिए हुडुक्क की रस्सियों को ढीला और कड़ा किया जाता है। अलग-अलग क्षेत्रों में इसे हुडुक्का, हुडूक, हुरुक्का, डेरु, डडुक्की आदि के नाम से जाना जाता है। उत्तर भारत में कहार जाति के लोगों द्वारा इसका प्रयोग किया देखा जाता है।

(विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—संगीत पारिजात)

हुडुक्की (हुडुक्क) राज. ७७

हुडुक्की

आकार—हुडुक्का से छोटा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवरण—यह वाद्य हुडुक्का की ही एक प्रजाति है, जिसका आकार हुडुक्का से छोटा होता है।

(विवरण के लिए द्रष्टव्य—हुडुक्का)

होरंभ (होरम्भ) राज. ७७, जीवा. ३/५८८, जम्बू. ३/०,

होरंभ, महाढक्का

आकार—सामान्यतः ढक्का से बड़ा।

विवरण—इस वाद्य का आकार ढक्का से काफी बड़ा होता है, जिसकी ध्वनि भी तीव्र और गंभीर होती है।

विमर्श—जैनागमों के अतिरिक्त संगीत ग्रंथों में होरंभ नामक वाद्य का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। राज. टी. पृ. ४९-५० में होरंभ को महाढक्का का पर्याय माना है।

(विवरण के लिए द्रष्टव्य—भंभा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१

अकार आदि अनुक्रम से प्राकृत शब्द एवं हिन्दी अर्थ

आडम्बर	१	नगाड़ा, नक्कारा
आमोट, आमोत	१	आमोट, मंजीरा, मंजीर, मजीरा
आलिंग	२	आलिङ्ग
कंसताल	२	कांस्यताल
कच्छभी	३	कच्छपी वीणा
कच्छभी	४	कच्छपी
कच्छभी	४	कच्छपी सितार, सरस्वती वीणा
कडंब, करंब	४	गंजीरा,खंजीरा, कंजीरा, कडंब, दिमड़ी
कणक	५	कणक, तविल, हरीतिकी
कणित	५	पावा, वंश-पावा, क्वणिता
करड़	५	करटा, करट, करटी
करटि, करड़ी	६	करटा, करट, करटी
करधाण	६	कम्रा, कम्रिका, कम्राट, करधान, काष्ठताल
कलताल	६	करताल, खड़ताल, कठताल, राम गिड़गिड़ी, गिड़गिड़ी
कलसिया	७	कलश, पंचमुख वाद्य, त्रिमुख वाद्य
किणिय, किणित	७	ढोल, ढक
किरिकिरिय	८	किरिकिरिय, किरिकिट्टक, शुक्ति वाद्य
कुंभा	८	कुंभ, घड़ा, मटकी, कलश
कुक्कययं	८	तुंबवीणा, खुंखुणक, रबाब
कुक्कयय	९	झुनझुना, झुंझनी, खुलखुला, खुंखुना, गिलकी
कुतुंब कुत्तुंबक	९	कुस्तुम्ब, गोपुच्छा, यवाकृति
कुंतुंबर	९	कुस्तुंबर, तुम्बकनारी, घुमट
खरमुही	१०	खरमुखी, काहला, भूपाड़ो
गोमुही	१०	गोमुखी, नरसिंघा, रण-सिंघा, बांकया, वारगु, बांके
गोहिया	११	गोधा, गोधिका, गारसिया, की लेजिम
घंटा	११	घण्टा
घंटिया	१२	घर्घरिका, घंटिका, क्षुद्र-घंटा, घुंघरू
चित्तवीणा	१२	सप्ततंत्री वीणा, चित्रा वीणा, रबाब
छब्भामरी	१३	षड्भ्रामरी, मेमेराजन, वक्ष वीणा
झंझा	१३	झांझ
झल्लरि	१३	झल्लरी, भाण, चक्र-वाद्य, करचक्र
झल्लरि	१४	झालर, झालरि, जयघंटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झोडय	१४	झोडय, एकतंत्री वीणा, घोष वीणा, घोषवती वीणा, ब्राह्मी वीणा, घोषक वीणा।
डमरुह	१५	डमरू, बुदबुदके, कुडु-कुडुप्पे, नगाचंग
डिंडिम	१५	डिण्डिमा, तबुल
ढंकुण	१६	ढंकुण, गोपीयंत्र, गोपीजंत्र
णंदिस्सरा	१६	नंदीस्वर
तंती	१६	जंत्रवीणा, त्रितंत्रीवीणा, यंत्रवीणा, तंत्रवीणा, सितार, तम्बूरा
तल	१७	तल, ताली, जाल्रा
ताल	१७	ताल, ताली, टाड़
तुंबवीणा	१७	तम्बूरा, तानपूरा
तुडिय	१८	तुरुतुरी, तित्तरी, तुण्डकिनी, तुरही, तुर्य, तातुरी, कोम्बु, कहल, तुतरी
तूण	१९	तुण, तुनतुना, तुण-तुण, तुण-तुणे
तूणक	१९	तुइला, तूणक
दद्दरग	२०	दर्दुर, दर्दर, दर्दरक
दद्दरिगा	२०	दर्दरिका, लघुदर्दरक
दुंदुभि, दुंदुहि	२०	दुंदुभि
नंदी	२१	नंदी, उपंग, आनंद लहरी, खंगम, अपंग
नंदिघोसा	२२	नंदिघोस
नंदीमुइंग	२२	नंदीमृदंग
नकुल	२२	नकुल, नकुली, नकुला
नाली	२२	नाली, नादी
नाली	२३	नङ, नढ़, नाली
पडह	२३	पटह, ढोलक
पणव	२४	पणव,वीणा,पल्लव वीणा

पणव	२४	पणव, बड़े आकार का हुडुक
परिपरि	२४	परिपरि
परिली	२५	परिली, फिफली, फिरिली, फ़िलिली
परिवायणी	२५	परिवादिनी, सप्ततंत्री वीणा
पव्वग, पच्चग	२५	पर्वक, मुखवीणा, छोटा नागसर
पव्वीसग	२६	प्रविसक, पिनाकी वीणा, पिनाक, सुरवितान, पेना, पेन्नावीणा
पिरिपिरिया	२६	मुरली, मारगी मुरली, पिरिपिरि
पिरिली, पिरली	२६	पिरली, पुंगी, जिजीवी, तुम्बी, बीन, नागसर, महुवरि, महुदि, पीपिहरी
पेया	२७	पेया, महती काहला
पोया	२७	महती काहला
बद्धक	२७	तारपा, घोंघा, खोंगाडा, डोबरू, बद्धक
बद्धीसग	२८	बद्धीसक, बुआंग, धनुषाकार वाद्य
बल्लकी	२९	बल्लकी, सामान्य वीणा, एकतारा
भंभा	३०	भम्भा, ढक्का, ढंका
भामरी	३०	भ्रामरी वीणा, रूद्रवीणा, शिववीणा, तंजोरी वीणा
भेरी	३१	भेरी
मकरिय	३१	मकर, पट्टवाद्य, श्रीपर्णी
मड्डय	३१	मादल, मड्डलम्
मद्दल	३२	मर्दल
महति, महती	३२	महती वीणा, महावीणा, नारदवीणा, मत्तकोकिला वीणा, वन वीणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाभेरी	३३	महाभेरी
मुइंग	३३	मृदंग, पखावज
मुगुंद, मगुंद	३४	श्री खोल, खोल, मुकुन्द, मकंद
मुरय, मुरव	३४	मुरज, मुरसु, मुरव
रगसिगा	३४	रगसिगा, रणसिगा, रणसिंग वक्री, रणसिंग
रिंगिसिया	३५	रिंङ्गसिका, घर्षण वाद्य, रिगाब्रैया
रिगिसिगी	३५	रिगिसिगी, रापोनि, घर्षण वाद्य
लत्तिय	३५	लत्तिय, ब्रह्मतालम, कांस्य वाद्य
वंस	३६	वंशी, बासुरी
वच्चग	३६	अलगोजा, वच्चक, बीन
वद्धीसग	३७	बद्धीसक, बुआंग, धनुषाकार वाद्य
वरमुरय	३७	श्रेष्ठ मुरज
वल्लकि	३७	वल्लकी
वाली	३७	आड़ी वंशी, वाली
वालिया	३७	कटोला, सूप वाद्य, वालिका
विंचित्तवीणा	३८	विचित्रवीणा
विपंचि	३८	विपञ्ची, नौ तंत्रीय वीणा
वीणा	३९	वीणा
वेणु	३९	वेणु
वेण पलासिय	३९	मूसिंग, भूचंग, मुख-चंग, वेणु पलासिय, मोर-चंग
वेवा	४०	पेपा, वेवा
संख	४१	शंख
सणालिय४	१	श्रीमंडल, घंटीबाजा, युनलो, थाली तरंग, सुनाली
सदुय	४२	सदुय, डक्का, डंका
सिंग	४२	शृंग, सिंगि, कोहुक, सींग
सुंसुमारिया	४३	शिशुमारिका
सुघोष	४३	सुघोष
हुडुक्क	४३	हुडुक्का, हुडुक, हुडूक, हुरुक्का, डेरू, डडुक्की
हुडुक्की	४३	हुडुक्की
होरंभ	४४	होरंभ, महाढक्का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-२

तत वाद्य–जो वाद्य तंत्री युक्त होते है, उसे तत वाद्य के अन्तर्गत लिया गया है।

कच्छभी
कच्छभी
कुक्कययं
चित्तवीणा
छब्भामरी
झोडय
ढंकुण
तंती
तुंबवीणा
तूण
तूणक
नंदि
नंदिघोसा
नकुल
पणव
परिवायणी
पव्वीसग
बद्धीसग
बल्लकी
भामरी
महति, महती
वद्धीसग
वल्लकि
विचित्रवीणा
विपंचि
वीणा

विवत वाद्य–जो वाद्य चर्मावनद्ध होते हैं, उसे वितत वाद्य के अंतर्गत लिया गया है।

आडम्बर
आलिंग
कडंब, करंब
कणक
करङ
करटि
कलासिया
किणिया, किणित
कुतुंब, कुत्तुंबक
कुतुंबर
झल्लरि
डमरुह
डिंडिम
दद्दरग
दद्दरिगा
दुंदुभि, दुंदुहि
नंदिघोषा
नंदीमुइंग
पडह
पणव
भंभा
भेरी
मड्डय
मद्दल
महाभेरी
मुइंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुगुंद, मगुंद
मुरय, मुरव
वरमुरय
सदुय
हुडुक
हुडुक्की
होरंभ

घन वाद्य—परस्पर टकराकर अथवा घर्षण के द्वारा जिन वाद्यों को बजाया जाता है उसे घन वाद्य के अंतर्गत लिया गया है।

आमोट, आमोत
कंसताल
कच्छभी
करधान
कलताल, करताल
किरिकिरिय
कुक्कययं, कुंभा
गोहिया
घंटा
घंटिया
झंझा
झल्लरि
णंदिस्सरा
तल
ताल
नंदिघोसा
मकरिय
रिंगिसिया
रिगिसिगी
लत्तिय
वालिया
वेणु पलासिय
सणालिय
सुंसुमारिया
सुघोस

सुषिर वाद्य—फूंक से अथवा हवा से बजाए जाने वाले वाद्य को सुषिर वाद्य के अंतर्गत लिया गया है।

कणिक
खरमुही
गोमुही
तुडिय
नंदिघोसा
नाली
नाली
परिपरि
परिली
पव्वग, पच्चग
पिरिपिरिया
पिरिली, पिरली
पेया
बब्धक
रगसिगा
वंस
वच्चग
वाली
वेणु
वेणु पलासिय
वेवा
संख
सिंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-३

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. अनुयोगद्वार सूत्र
वाचना प्रमुख–गणाधिपति तुलसी
संपादक–आचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं

२. अनुयोगद्वार मलधारीया टीका
श्री केशर बाई ज्ञान मंदिर
पाटण, सन्-१९३९

३. अनुयोगद्वार हारिभद्रीया टीका
सेठ देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार
बम्बई, संवत्-१९७३

४. अभिधान चिन्तामणि कोश
लेखक–कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद हेमचन्द्राचार्य
अनुवादक-संपादक–विजय कस्तूर सूरि
प्रकाशक–जसवंत गिरधरलाल शाह
अहमदाबाद, वि. सं. २०१३

५. अभिनव भारती–अभिनव गुप्ताचार्य

६. अल्प परिचित शब्द कोश
संपादक–आचार्स आनंद सागर सूरि,
देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार
सूरत, प्रथम संस्करण–१९७४

७. आचार चूला
संपादक–(मुनि नथमल) आचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं

८. इंग्लिश पाली डिक्शनरी
पीबी मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

९. इंडियन म्यूजिक-शाहिन्दा
इंडियन म्यूजिकल इंस्ट्रूमेंट्स (पब्लिकेशन डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया)
एस. कृष्णास्वामी

१०. उवासगदसाओ
संपादक–मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं १९७४

११. औपपातिक
संपादक–मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं १९७४

१२. औपपातिक टीका
पंडित दयाविमलजी ग्रंथमाला,
द्वितीय संस्करण, सं. १९९४

१३. कन्नड़ हिन्दी शब्द कोश
संपादक–डॉ. एन. एस. दक्षिणामूर्ति
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
प्रथम संस्करण-१९७१

१४. जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति
संपादक–मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं १९७४

१५. जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका
नगीनभाई छेलाभाई झवेरी, बम्बई,
सन् १९२०

१६. नायाधम्मकहाओ
वाचना प्रमुख–आचार्यश्री तुलसी
संपादक–युवाचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं

१७. ज्ञाताधर्मकथा टीका
श्री सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति,
सूरत, सन् १९५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. जीवाजीवाभिगम
संपादक–मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)
प्रकाशक–जैन् विश्व भारती, लाडनूं
प्रथम संस्करण-१९७४

१९. जीवाजीवाभिगम टीका
देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार
सं. १९९५

२०. ठाणं
संपादक–मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं
प्रथम संस्करण-१९७४

२१. नालंदा बृहद् हिन्दी कोश

२२. दि म्यूजिक ऑफ इंडिया–अतिया बेगम

२३. दि म्यूजिक ऑफ इंडिया–भोपले

२४. दि म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेंट्स–सी. आर. डे

२५. पाइअसद्दमहण्णओ
संपादक–हर गोविन्द दास
प्रकाश–प्राकृत टेस्ट सोसायटी
बनारस-१९६३

२६. पौराणिक संदर्भ कोश–डॉ. एन. पी.

२७. प्रज्ञापना
वाचना प्रमुख–आचार्यश्री तुलसी
संपादक–मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं

२८. प्रश्न व्याकरण
वाचनाकार–आचार्यश्री तुलसी
संपादक–युवाचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं

२९. प्रज्ञापना टीका–आगमोदय समिति
बम्बई-१९१८

३०. प्रश्नव्याकरण टीका–आगमोदय समिति
बम्बई-१९१९

३१. प्राकृत हिन्दी कोश
डॉ. के. आर. चंद्रा
प्रकाशक–प्राकृत जैन विद्या विकास फंड
अहमदाबाद-१५

३२. बृहद्देशी–मतंग
(जीवनकाल-५वीं शताब्दी के आसपास)

३३. भगवई
वाचना प्रमुख–आचार्यश्री तुलसी
संपादक–युवाचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक–जैन विश्व भारती, लाडनूं

३४. भरत का संगीत सिद्धांत
डॉ. कैलाशचंद्र देव बृहस्पति

३५. भरत कोष–प्रो. रामकृष्ण कवि

३६. भरत नाट्यशास्त्र–भरत मुनि
(जीवनकाल–ईसा से २०० वर्ष पूर्व)

३७. भरत नाट्य शास्त्र (अंग्रेजी अनुवाद)
–श्री मनमोहन घोष

३८. भरत भाष्य–नान्यदेव

३९. भारतीय संगीत का इतिहास–उमेश जोशी

४०. भारतीय संगीत–प्रो. कृष्णराव गणेश मूले

४१. भारतीय संगीत वाद्य
डॉ. लाल मिश्र मणि
प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ
बी.-४५-४७, कनाट प्लेस, नई दिल्ली

४२. भारतीय संगीत में वाद्यवृन्द
डॉ. कविता चक्रवर्ती
प्रकाशक–राजस्थानी ग्रंथागार
सोजती गेट के बाहर, जोधपुर

४३. भारतीय वाद्य–बी. सी. देव
स्टेट बोर्ड फॉर लिटरेचर एंड कल्चर
बम्बई

४४. भारतीय वाद्य गलु–एम. ए. पुरंदर
कर्नाटक युनिवर्सिटी–कन्नड़

४५. भारतीय वाद्य का इतिहास
जी. एच. तारालेकर
महाराष्ट्र यूनि. बुक प्रोडक्शन बोर्ड–मेरठ

४६. महाभारत
४, गीता प्रेस गोरखपुर
संपादक–नारायण राम आचार्य सन् १९४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. म्यूजिकल इंस्ट्रूमेंट्स ऑफ दि वर्ल्ड
कार्ल इंगेल,
आर. एन. प्रिन्टर्स, जयपुर
४८. म्यूजिकल इंस्ट्रूमेंट्स ऑफ इंडिया
बी. सी. देव
देअर हिस्ट्री एंड एवोल्यूशन
४९. म्यूजिकल इंस्ट्रूमेंट्स इन स्कल्पचर
जी. एच. तारालेकर, एम. तारालेकर
५०. माणक हिन्दी कोश
५१. राज प्रश्नीय
वाचना प्रमुख—आचार्यश्री तुलसी
संपादक—युवाचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं
५२. राजप्रश्नीय टीका
गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय,
अहमदाबाद, वि. सं. १९७४
५३. राजस्थानी शब्द कोश
संपादक—डॉ. सीताराम लालस
चौपासनी शिक्षा समिति, जोधपुर
५४. राजस्थानी संगीत और संगीतकार
प्रताप सिंह चौधरी
जयपुर प्रिण्टर्स प्राइवेट लिमिटेड,
एम. आई रोड, जयपुर
५५. राजस्थान का लोक संगीत—शन्नो खुराना
सिद्धार्थ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
५६. राजतरंगिणी—कल्हाण
५७. यंत्र कोष—एम. एस. टैगोर
५८. यंत्र क्षेत्र दीपिका—सर सौरेन्द्र मोहन ठाकुर
(जीव. १८८२)
५९. वाद्य यंत्र—बी. चैतन्य देव
अनुवादक—अलका पाठक
प्रकाशक नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया
ए-५, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली
६०. वाद्य प्रकाश—विद्या विलासी पंडित
(जीवनकाल-१७८०)
६१. वैदिक इन्डेक्स
६२. विपाकश्रुत—अंगसुताणि, भाग-३
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं
प्रथम संस्करण-१९७४
६३. विपाकश्रुत टीका
आगमोदय समिति—बंबई-१९२०
६४. श्रीमद्भगवतगीता
६५. संगीत रत्नाकर—सारंगदेव
(जीवनकाल—१३वीं शताब्दी)
६६. संगीत चूड़ामणि—जगदेक मल्ल
६७. संगीत कमरन्द—नारद
(जीवनकाल—ईसा की प्रथम शताब्दी)
६८. संगीत राज—कुम्भकर्ण
६९. संगीत पारिजात—अहोबल
(जीवनकाल—१७वीं शताब्दी)
७०. संगीत—समयसार, पार्श्वदेव
७१. संगीत सुधा—रघुनाथ
७२. संगीत दर्पण—दामोदर पंडित
७३. संगीत सार—तानसेन
७४. संगीत शास्त्र—के. वासुदेव शास्त्री
७५. संगीतोपनिषत्सारोद्धार—सुधा कलश
७६. समवायांग सूत्र
वाचना प्रमुख—आचार्यश्री तुलसी
संपादक—युवाचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं
७७. शब्दकल्पद्रुम
७८. राज प्रश्नीय
वाचना प्रमुख—आचार्यश्री तुलसी
संपादक—युवाचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं
७९. सूर्य प्रज्ञप्ति
वाचना प्रमुख—आचार्यश्री तुलसी
संपादक—युवाचार्य महाप्रज्ञ
प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनूं
८०. हरियाणवी शब्द कोश
८१. हिन्द शब्द सागर
८२. हिरण्य केशी सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

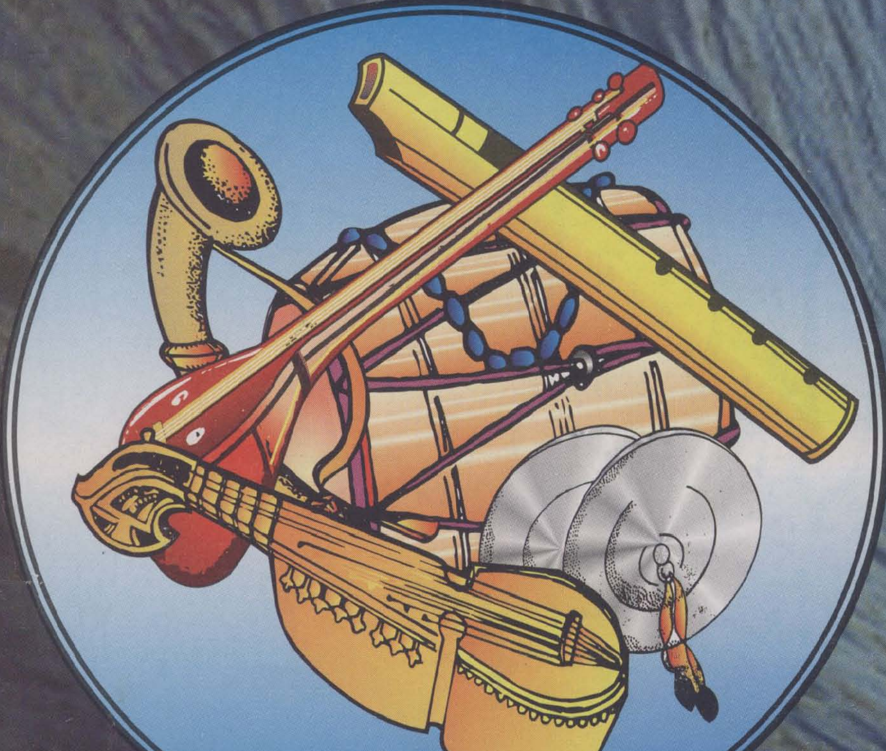

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org